हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीज ।

हिन्दीसाहित्यके भंडारको उत्तम उत्तम ग्रंथरत्नोंसे भूषित करनेके लिए यह सीरीज निकाली गई है । हिन्दीके नामी नामी विद्वानोंकी अनुमतिसे सीरीजके लिए ग्रन्थ चुने जाते हैं । सभी ग्रंथोंकी सफाई, छपाई लासानी होती है । अभी तक जितने ग्रंथ छप चुके हैं उन सबकी सभीने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है । स्थायी ग्राहकोंको सभी ग्रंथ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं । आठ आना फीस भेजकर स्थायी ग्राहकोंमें नाम लिखाइए । नीचे लिखे ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं—

ग्रंथ	मूल्य	ग्रंथ	मूल्य
१–२ स्वाधीनता	३)	१७ दुर्गादास	॥=)
३ प्रतिभा	१)	१८ बंकिमनिबन्धावली ...	॥)
४ फूलोंका गुच्छा	॥-)	१९ छत्रसाल	१॥)
५ आँखकी किरकिरी ...	१॥)	२० प्रायश्चित्त	१)
६ चौबेका चिट्ठा	॥)	२१ अनाथम लिंकन	॥=)
७ मितव्ययता	॥=)	२२ मेवाड़पतन	॥)
८ स्वदेश	॥=)	२३ शाहजहाँ	॥=)
९ चरित्रगठन और मनोबल	≡)	२४ मानव-जीवन	१=)
१० आत्मोद्धार	१)	२५ उस पार	१)
११ शान्तिकुटीर	॥)	२६ ताराबाई	१)
१२ सफलता	॥=)	२७ देशदर्शन	३)
१३ अन्नपूर्णाका मंदिर ..	॥)	२८ हृदयकी परख	॥=)
१४ स्वावलम्बन	१)	२९ नवनिधि	॥=)
१५ उपवास चिकित्सा ...	॥=)	३० नूरजहाँ	१)
१६ सूमके घर धूम	≡)	३१ आयर्लैंडका इतिहास ...	२॥)

डाक्टर बरनर मैकफेडन ।

अमरिकाके प्रसिद्ध उपवास चिकित्सक, फिजिकल कल्चरके संस्थापक और उपवासादि प्राकृतिक चिकित्सासम्बन्धी अनेक ग्रन्थोंके लेखक ।

ि ।

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेकी इच्छा और प्रयत्न करना केवल परम आवश्यक ही नहीं बल्कि बहुत ही स्वाभाविक भी है। पर इस इच्छाकी पूर्ति और प्रयत्नकी सफलता बहुत ही थोडे लोगोंके भाग्यमें होती है। दिन पर दिन रोगों और रोगियोकी सख्या इतनी बढती जाती है कि पूर्ण रूपसे स्वस्थ मनुष्य ढूँढ निकालना बहुत ही कठिन हो गया है। यहाँतक कि बहुत पहले ही इस देशमें ' शरीरं व्याधिमन्दिरम् ' का सिद्धान्त बनाया जा चुका है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। शरीर स्वयं कभी व्याधि-मंदिर नहीं होता, उसकी प्रवृत्ति सदा नीरोग होने या रहनेकी ओर होती है, पर हम आहार विहार आदिके प्राकृतिक नियमोका उल्लघन करके स्वय उसे व्याधि-मन्दिर बना लेते हैं। प्राणि-मात्रमें सर्वश्रेष्ठ गिने जानेवाले मनुष्यके लिए यह बात बहुत ही लज्जास्पद है।

इससे भी अधिक लज्जास्पद आजकलकी वह प्रचलित दूषित प्रथा है जिसकी सहायतासे व्याधिको शरीरसे बाहर निकाल देनेका प्रयत्न किया जाता है। जिस शरीरमें अपने आपको स्वय नीरोग कर लेनेकी सबसे बडी शक्ति विद्यमान हो, उस तरह तरहके विषोके प्रयोगसे नीरोग करनेका प्रयत्न करना कभी लाभदायक नहीं हो सकता। इस सम्बन्धमें सबसे अधिक आश्चर्य और दु खकी बात यह है कि समस्त प्रचलित चिकित्सा प्रणालियोंमें जो प्रणाली सबसे अधिक दूषित और हानिकारक है, सारे ससारमें वही सबसे अधिक प्रचलित भी है। हमारा तात्पर्य एलोपैथीसे है जिसमें बहुत ही साधारण और सौम्य ओषधियोको बलपूर्वक तीव्र, उग्र और भयकर बनाया जाता है। यही कारण है कि उनका मात्रामें थोडी सी वृद्धि हो जाने पर भी बहुत बडे अनर्थकी सम्भावना होती है। इस पुस्तकमे ओषधियोंके सम्बन्धमे बहुत बडे बडे डाक्टरोंकी जो निन्दात्मक सम्मतियाँ दी गई हैं, वे सब एलोपैथिक ओषधियो पर ही हैं। ओषधि चिकित्साकी और भी जितनी प्रणालियाँ हैं वे भी थोडी बहुत दूषित और हानिकारक अवश्य हैं। इसका मुख्य करण यही है कि ओषधिकी सहायतासे होनेवाली अस्थायी आरो-ग्यताका अपेक्षा शरीरकी स्वसम्पादित आरोग्यता कहीं अधिक अच्छी होती है।

शरीरको आरोग्यता प्राप्त करनेके सबसे अच्छा अवसर उसी समय मिलता है जब कि उसकी सारी शक्तियोंको सब तरहके भारोंसे छुट्टी मिल जाय और यह छुट्टी लघन या उपवासकी सहायतासे ही मिल सकती है। जिस भोजनका

काम हमारे शरीरके अंग प्रत्यंगको पुष्ट करना है, वह हमारे शरीरके अंग प्रत्यंगके रोगोंको भी अवश्य ही बढाता जायगा, क्योंकि 'वृद्धि और पुष्टि करना' ही उसका स्वाभाविक धर्म है। भोजन करते रहनेके अतिरिक्त जहाँ ओषधियों आदिकी सहायतासे उसके कार्य्योंमे और भी विघ्न डाला जाता है, वहाँका रक्षक ईश्वर ही है। आयुर्वेदमे 'लंघन परमौषधम्' इसी लिए कहा गया है कि उससे शरीरको अपनी स्वाभाविक और आरोग्य स्थिति तक पहुँचनेमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। प्रत्येक रोगसे उपवासकी सहायतासे जितनी जल्दी छुटकारा मिलता है उतनी जल्दी और किसी उपायसे नहीं मिल सकता। और इस पुस्तकमें इसी उपवासके गुण, प्रकार और विधान आदि बतलाये गये हैं।

इस पुस्तकमें जो बातें बतलाई गई हैं वे इसी लिए बहुत अधिक हृदयग्राह्य हैं कि वे प्राकृतिक, सहज और युक्ति-युक्त हैं। हमारा विश्वास है कि जो विचारवान् पक्षपातरहित होकर इसमें बतलाई हुई बातो पर ध्यान देगा वह बहुत ही सहजमें उनके गुणोको स्वीकार करके उनका समर्थक और पक्षपाती बन जायगा औषधोंके जालसे निकलकर प्रकृतिदेवीकी गोदमे स्वतन्त्रतापूर्वक रहने लगेगा।

यूरोप, अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे उपवास-चिकित्सालय खुल गये हैं जिनमें हजारों असाध्य रोगी भी आरोग्यता प्राप्त कर चुके हैं। उन्हींमेंसे एक चिकित्सालयके अध्यक्ष और संस्थापक बरनर मैक्फेडन महाशय भी हैं। मैकफेडन साहबका केवल चिकित्सालय ही नहीं है, बल्कि उपवासचिकित्साशास्त्र सिखलानेके लिए एक कालेज भी है। उस कालेजके पहले भारतीय ग्रेजुएट श्रीयुत डाक्टर श्रावक बी० मादन हैं जिन्होंने सैण्डाक्रूज बम्बईमें एक उपवास-चिकित्सालय खोल रखा है। उन्होने भी सैकडो पारसियो और मराठों आदिको केवल उपवास कराकर ही बडे बडे भयकर रोगोसे मुक्त किया है, जिनके वर्णन समय समय पर वहांके समाचारपत्रोंमे छपते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक डा० मैकफेडनकी Fasting, Hydropathy and Exercise नामक अँगरेजी पुस्तक तथा डा० मादनकी 'उपवास' नामक गुजराती पुस्तकसे सहायता लेकर लिखी गई है, एतदर्थ हम दोनो महानुभावोंके परम कृतज्ञ हैं। श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीके भी हम बहुत कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हमे ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखनेका परामर्श दिया और उसे प्रकाशित किया है।

काशी, शिवरात्रि।
विक्रम स० १९७२

रामचन्द्र वर्म्मा।

उपवास-चिकित्सा ।

हमारे शरीरका संगठन ।

प्रत्येक मनुष्य, पशु और यहाँ तक कि जीवमात्रका शरीर इस प्रकार बना हुआ है कि यदि उसमें किसी प्रकारके बाहरी या ऊपरी पदार्थके कारण दोष उत्पन्न होने लगे तो वह शरीर—यदि उसके साथ किसी तरहका बल प्रयोग न किया जाय और उसे स्वाभाविक स्थितिमें रहने दिया जाय तो—उस दोषको आप ही आप दूर कर लेगा। शरीर यथासाध्य किसी अनावश्यक और हानिकारक वस्तुको अपने अंदर नहीं रहने देगा। उसका संगठन ही ऐसा है कि वह सदा उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करता रहेगा। एक तो स्वयं हमारे शरीरमें ही हरदम बहुतसे अनिष्टकारी पदार्थ और तरह तरहके विष उत्पन्न होते रहते हैं, दूसरे हम लोगोंकी मूर्खता और कुपथ्य आदिके कारण उनकी संख्या और भी बढ जाती है। यदि शरीर अनिष्टकारी पदार्थोंको बाहर निकालनेका काम थोड़ी देरके लिए भी बंद कर दे तो जीवन असम्भव हो जाय। साँस, पसीने, मल, मूत्र, थूक और छींक आदिके रूपमें शरीरके भिन्न भिन्न भागोंसे सदा हमारे शरीरसे तरह तरहके विकार निकलते रहते हैं। हमारा शरीर ये काम अपने कर्तव्य-स्वरूप करता है। ऐसी दशामें हमारा भी यह कर्तव्य होना चाहिए कि हम यथासाध्य और जान-बूझ कर शरीरके प्रति कोई ऐसा अन्याय न करें, उसके अंदर कोई ऐसा दुष्ट पदार्थ न जाने दें जिसका प्रतिकार या प्रतिबंध उसकी शक्तिके बाहर हो। यदि हम अपने इस कर्तव्यका ध्यान न रखेंगे, शरीरके अंगों पर उनकी शक्तिसे अधिक बोझ लादेंगे तो परिणाम यह होगा कि हमारा शरीर हमें जवाब दे देगा, हम रोगी हो जायँगे और अंतमें मर भी जायँगे।

उपवास-चिकित्सा-

साधारण टाइप राइटरोंमें एक घंटी लगी रहती है जो छापनेके समय एक लाइन खतम हो जानेपर आपसे आप बोल उठती है। उसका शब्द सुनते ही छापनेवाला सचेत हो जाता है और पेंच घुमाकर नई लाइन प्रारंभ करता है। इसी प्रकार और भी बहुतसे यंत्रोंमें ऐसे पुरजे लगे रहते हैं जो अपनी किसी नई आवश्यकताकी सूचना किसी विशिष्ट संकेतके द्वारा देते हैं। हमारे शरीरकी बनावट भी बिल्कुल वैसे ही यंत्रोंके समान, बल्कि उनसे भी अधिक पूर्ण और अच्छी है। हमारा स्नायु-समूह आनेवाली किसी बाहरी विपत्तिको देखते ही एक विशेष रूपमें हमें भयसूचक संकेत करता है। वह हमें केवल बाहरी विपत्तियोंकी ही सूचना नहीं देता बल्कि हमारी भीतरी आवश्यकताओंका ज्ञान भी हमें करा देता है। ज्योंही हमारे भोजन या श्वास आदिमें किसी प्रकारकी बाधा या त्रुटि होती है, अथवा हमारी रगों, पट्ठों आदिमें किसी प्रकारका दोष उत्पन्न होता है, त्योंही वह एक विशेष प्रकारसे -जिसे हम उसकी भाषा भी कह सकते हैं-हमें उसकी सूचना दे देता है, केवल सूचना ही नहीं, वह उसके प्रतिकारके लिए आवश्यक साधन भी बतला देता है। तात्पर्य यह कि हमारे शरीरमें जितनी असाधारण और अस्वाभाविक घटनायें होती हैं, स्नायु-समूह अपनी ओरसे उन सबकी सूचना दे दिया करता है। बहुत अधिक सरदी या गरमीका पता हमें तुरत ही अपनी त्वचासे लग जाता है। यदि हवामें मिर्चोंका धुआँ, किसी प्रकारकी घास या धूल आदि सम्मिलित हो तो हमें तुरत खाँसी आने लगती है। यही खाँसी वह सूचना है जो हमें फेफड़ोंके द्वारा मिलती है। छोटेसे छोटा तिनका या कीड़ा यदि हमारी आँखोंके सामने आ जाता है तो हमारी पलकें आपसे आप, बिना हमारी इच्छाके ही बन्द हो जाती हैं। जहाँतक सम्भव होता है, हमारा शरीर भीतरी और बाहरी अनिष्टोंसे अपनी रक्षा आप-ही कर लेता है। हमारा शरीर एक ऐसा मकान है जो अपनी कोठरियोंमें आप ही आप झाड़ू दे लेता है, अपने चूल्हे या अपनी अंगियाँ आप ही जला लेता है, आवश्यकता पड़ने पर अपनी खिड़कियाँ और दरवाजे आप ही आप खोल और बंद कर लेता है और दुष्ट आक्रमणकारियोंको पहले तो स्वयं ही मार भगानेकी चेष्टा करता है और जब वह उसमें असमर्थ होता है तब उसकी सूचना अपने किराये दारको दे देता है। उस सूचनाको समझना और आनेवाली विपत्तिसे शरीरकी रक्षा करना किरायेदारका काम है।

शरीरकी भीतरी क्रिया ।

शरीर रचना-शास्त्रके ज्ञाताओं और बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि मनुष्यके शरीरमें जन्मसे लेकर मृत्युतक हर दम एक प्रकारका विष बनता और इकट्ठा होता रहता है। साधारणत लोगोंको यह बात सुनकर हँसी आवेगी, पर हँसा आनेका कोई वास्तविक कारण नहीं है । बात यह है कि मनुष्यके सारे शरीरमे छोटे छोटे कोश हैं जिन्हें अँगरेजीमें Cells कहते हैं । ये कोश शरीरकी आन्तरिक क्रियासे आप ही आप नष्ट होते रहते हैं और रक्त-सचालनकी सहायतासे उनके स्थान पर नये कोश भी बनते जाते हैं । इस प्रकार हरदम शरीरमें पुराने कोश नष्ट होते और नये कोश बनते रहते हैं । यह क्रिया जीवधारियोंके अतिरिक्त वनस्पतियोंमे भी होती रहती है । अँगरेजीमे परिवर्तनकी इस क्रियाको Metabolism कहते हैं । हमारे यहाँ प्राचीन बौद्धोंमें भी इससे मिलता जुलता एक प्रकारका सिद्धान्त था जिसे क्षणिकवाद या क्षणभग कहते हैं । इस मतके अनुसार प्रत्येक वस्तुकी अवस्था या स्थितिमें प्रतिक्षण बराबर परिवर्तन होता रहता है । अस्तु । पुराने और नये कोशोंका जो अश अवशिष्ट रह जाता है, वही एक प्रकारका विष है । यदि शीघ्र ही उसका नाश न हो तो उससे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँच सकती है । हमारे शरीरके अवयवोंका एक मुख्य कार्य यह भी है कि जहाँ तक शीघ्र हो सके उस दूषित अशको हमारे शरीरसे बाहर निकाल दें । उस दूषित अशके बाहर निकलनेका प्रधान मार्ग हमारे शरीरकी त्वचा है जिससे वह अश पसीनेके रूपमें निकलता है । इसके अतिरिक्त हमारे जिगर, पेट, गुरदे, तिल्ली और अँतड़ियों आदिसे भी सदा बहुतसा दूषित अश निकलता रहता है जो हमारे खूनके साथ मिलकर उसका रग काला कर देता है । यह दूषित अश हमारे फेफड़ोंकी सहायतासे उस आक्सिजन द्वारा जलता या नष्ट होता रहता है जो साँस लेनेमें हवाके साथ हमारे फेफड़ों तक पहुँचता है । यदि हम किसी प्रकार साँस न ले अथवा न ले सके तो वह दूषित अश या विकार हमारे खूनमें बढ़ा हो जायगा । फल यह होगा कि पेटमें पचा हुआ भोजन शरीरके सब अंगोंमे न पहुँच सकेगा और वह विष-तुल्य विकार सारे शरीरमे फैलकर हमे कमजोर करता करता अंतमे मार डालेगा । पर हमारे फेफड़े उस विकारको भी

शरीरमें इकट्ठा नहीं होने देते और उच्छ्वासके द्वारा बडे परिमाणमें उसे बाहर निकालते रहते हैं। इसी प्रकार मल-मूत्र और खखार आदिके रूपमें हमारे शरीरसे बहुतसे विकार बाहर निकलते रहते हैं। यदि इन विकारोंका निकलना बंद हो जाय और वे शरीरके अंदर ही रह जायँ तो तुरंत ही हमारी मृत्यु होनेमें कोई सन्देह न रह जाय।

वैज्ञानिकोंका यह भी मत है कि जब हम अधिक परिश्रम करते हैं, तब हमारे शरीरके कोश या cells अधिक परिमाणमें नष्ट होते हैं, पर नये कोश अधिक परिमाणमें उसी समय बनते हैं, जब कि हम सब प्रकारके शारीरिक श्रम छोड़कर आराम करते हैं। अर्थात् शरीरकी आरोग्यताके लिए कामकाज, परिश्रम और व्यायाम आदिकी जितनी आवश्यकता है, शरीरको सब प्रकारके परिश्रमोंसे छुट्टी देकर सुखी बनानेकी भी उतनी ही आवश्यकता है। यदि हम अपने शरीरको आराम न देंगे और उसे हरदम काममें लगाये रहेंगे तो उसमें नवीन शक्ति नवीन जीवनका संचार न होगा। फल यह होगा कि हम दिनपर दिन दुर्बल और रोगी होते जायँगे। जो लोग अपने शारीरिक बलके भरोसे नित्य परिश्रम ही करते रहते हैं और कभी आराम नहीं करते वे बहुत शीघ्र अपने स्वास्थ्य और यहाँ तक कि प्राणोंसे भी हाथ धो बैठते हैं। शरीरको आराम देनेका सबसे अच्छा प्राकृतिक उपाय निद्रा है। मनुष्यके शरीरके कोश सोनेमें ही सबसे अधिक परिणाममें बनते हैं। जाग्रत अवस्थामें परिश्रम करनेके कारण जो पुराने कोश नष्ट होकर विषका रूप धारण रूप करते हैं उनका शमन भी सोनेमें ही होता है। बहुत अधिक कसरत करनेवालों या दौडनेवालोंको लीजिए। जो लोग दम बाँधकर बहुत अधिक कसरत करते या दौड़ते हैं उनके शरीर और छातीमें एक प्रकारका दर्द उत्पन्न हो जाता है। मैकेंजी नामक एक प्रसिद्ध डाक्टरने इस दर्दका कारण यह बतलाया है कि बहुत अधिक परिश्रम करने या दौड़ने आदिके कारण शरीरमेंका इतना अधिक दूषित अंश रक्तमें मिल जाता है कि फेफडे उसे साँसके द्वारा बाहर निकालनेमें असमर्थ हो जाते हैं। उस दशामें मनुष्यके सिरमें चक्कर आने लगता है और उसकी आकृति देखनेसे जान पड़ता है कि उसे स्वच्छ हवाकी बहुत आवश्यकता है। जब जरा इस परिश्रम

करनेवाले या दौड़नेवालेको थोड़ी देरतक आराम करने दीजिए। उसका हाँफना कुछ कम हो जायगा और उसका दर्द जाता रहेगा। इसका कारण यही है कि उसके दूषित अंश बाहर निकालनेवाले अवयवोंको कुछ आराम मिला है और वे अपना कार्य्य अच्छी तरह करने लगे हैं। शरीरमें एकत्र हुए विषके बाहर निकलने ही उसका दर्द भी कम हो जाता है। इससे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि किसी प्रकारका अधिक परिश्रम करनेके उपरान्त शरीरके भिन्न भिन्न अंशोंमें जो दोष या विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करनेके लिए उन अवयवों या अंगोंको आराम देना चाहिए, कुछ समय तक उनसे कोई नया काम न लेना चाहिए। यह सिद्धान्त संसारके सभी कामों और सभी पदार्थोंमें समान-रूपसे प्रयुक्त होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, नदियाँ, वनस्पतियाँ और वृक्ष आदितक आराम चाहते और करते हैं। जिस चीजसे बहुत अधिक और निरंतर काम लिया जाता है, वह बहुत जल्दी नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और जिसे बीच बीचमें अवकाश मिलता रहता है, वह अपनी पूरी आयुतक पहुँचती और अपना कार्य्य उत्तमतापूर्वक करती है।

नियमोंका उल्लंघन ।

मनुष्य है तो जीव-मात्रमें सबसे अधिक श्रेष्ठ, पर उसके काम और आचरण बहुधा पशुओंके कामों और आचरणोंसे भी गये-बीते होते हैं। इस उन्नति और सभ्यताके जमानेमें तो उसके निन्दनीय आचरण और भी बढ़ते जाते हैं। हम लोग औरोंके साथ जो अन्याय करते हैं वह तो करते ही हैं। हमारा सबसे बड़ा अन्याय स्वयं अपने साथ–अपने शरीरके साथ–होता है। हमारा यह अन्याय इतना पुराना और बढ़ा चढ़ा है कि उसका बहुत अधिक अभ्यास हो जानेके कारण हम उसे अन्याय ही नहीं समझते। हम न तो अपने शरीर और बच्चोंको देखते हैं और न हमें उनकी रक्षा और वृद्धिका ध्यान रहता है। आप किसी बंदर या बकरीको भांग या अफीम खिलानेका प्रयत्न कीजिए, आपको कभी सफलता न होगी, पर अपने आपको समझदार कहनेवाले बहुतसे ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो इनसे भी निकृष्ट पदार्थोंको प्राप्त करनेमें अपनी ओरसे कोई कसर न छोड़ेंगे। जो मनुष्य

विवेक-युक्त कहलाता है वही कभी इस बातका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि वह स्वयं शाकाहारी जीवोंकी श्रेणीका है अथवा मांसाहारी जीवोंकी श्रेणीका। उसे शराब, कबाब, माँस, मछली अफीम जो चाहिए सो खिला दीजिए, वह बड़ी प्रसन्नतासे खा लेगा। यही नहीं बल्कि वह स्वयं उन सब पदार्थोंके पानेका प्रयत्न करेगा और सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि जितनी अधिक मात्रामें वह उन सब पदार्थोंको उदरस्थ कर सकेगा उतनी अधिक मात्रा लेनेमें वह अपनी ओरसे कोई बात उठा न रखेगा! लोग कहते हैं कि पशुओंमें एक प्रकारका सहज या स्वाभाविक ज्ञान होता है जिसके कारण वे कोई हानिकारक पदार्थ ग्रहण नहीं करते। वस्तुतः ठीक, पर क्या वह सहज और स्वाभाविक ज्ञान मनुष्योंमें नहीं है? है और अवश्य है। पर मनुष्य जान बूझकर उस ज्ञानका गला घोटता है और स्वयं बरपूर्वक उसके विरुद्ध आचरण करता है। छोटे छोटे बच्चोंको मांस देखकर स्वाभाविक घृणा होती है पर माता पिता और घरके दूसरे लोग उस तरह तरह बहका कर मांस खानेके लिए प्रवृत्त करते हैं। यह घृणा वह सहज ज्ञान नहीं तो और क्या है? बड़े बड़े शराबी भी शराब पीनेके समय बेतरह नाक सिकोड़ते और मुँह बिचकाते हैं! क्यों? इसी लिए कि वे अपने सहज-ज्ञानकी हत्या करते हैं अपनी प्रकृतिके विरुद्ध आचरण करते हैं। सुरती खाने भाँग अफीम, गाँजा आदि पानेके लिए लोगोंको क्या महीनों थोड़ी थोड़ी मात्रा कम कर अभ्यास करना पड़ता है? इसी लिए कि ये सब पदार्थ स्वभावतः उनके खानेके योग्य नहीं होते। इन सबके व्यवहारके लिए मनुष्यको अपने स्वभाव और प्रवृत्तिमें परिवर्त्तन करना पड़ता है।

मनुष्यका यह अन्याय और अनौचित्य केवल यहीं तक नहीं रुक जाता बल्कि आगे चलकर वह और भी विकरालरूप धारण करता है। एक तो वह खाद्य और अखाद्य सभी पदार्थ खाता ही है, दूसरे वह उन्हें अपनी आवश्यकता और शक्तिसे कहीं अधिक खा लेता है। आपको भूख तो बिलकुल नहीं है, पर आपके मित्र महाशयका बहुत आग्रह है कि भोजन तैयार है आप कुछ न कुछ अवश्य खा लीजिए। आप अपनेको लाचार समझकर खाने बैठ जाते हैं। आप घरसे तो भर पेट भोजन करके चलते हैं पर रास्तेमें कोई बढ़ियासी चीज बिकती हुई देखकर मोल लेते हैं और उसके खानेका मौका ढूँढ़ने लगते हैं। किसी मित्रके यहाँ निम

नणमे जाकर तो आपका यह विश्वास बहुत ही दृढ़ हो जाता है कि—" पराचा दुर्लभ लोके शरीराणि पुनः पुन ।" इन सब अवसरो पर आप यह नहीं समझते कि हमारा पेट इतनी तरहकी और इतनी अधिक चीज पचानेमें समर्थ होगा या नहीं। पेट अपना चिन्ता आप ही कर लेगा, आपसे और उससे मतलब ? पर नहा, थोडी हा देर बाद मतलब पैदा हो जाता है। ज्योंहा आपने कुछ अधिक खाया त्योंहा आपकी तबीयत भारी हो जाती है और आपको चलने फिरनेमें कठिनाई होती है। उस समय आप लेमनेडवालेकी दूकानकी शरण लेते हैं, दोस्तोस नमक सुलेमानी माँगते हैं और इसी प्रकारके अन्य उपचारोंकी चिन्तामे लगते ह। जो लोग इतना मोटा बातें नहीं समझ सकते उन्हें यह बात समझाना तो और भी कठिन है कि ये ऊपरी उपचार उस समय तो मनुष्यकी शारीरिक वेदना कम कर देते हैं पर स्वय यह वेदना बीजरूपसे उनके शरीरमे बनी ही रहती है और आगे चलकर अनेक बडे बडे रोगरूपी वृक्ष उत्पन्न करती है।

यद्यपि पाश्चात्य सभ्य देशोंमे भी लोग २४ घटोंके अन्दर पाँच पाँच बार भोजन करते ह और उनके भोजनकी मात्रा भी कम नहीं होती है तथ पि अन्य देशोंका अपेक्षा भारतमें अधिक परिमाणमे भोजन करनेवाले बहुतायतसे ह। दस दस सेर दही और चिउडा खानेवाले मैथिलों और बारह बारह सेर लड्डू खानेवाले भट्टों और चौबोंको जाने दीजिए, पजाबके साधारण जाट भी एक बारमे डेढ सेर आटेकी रोटियाँ खाते हैं, भोजपुरिये देहातियोंको बिना डेढ सेर सत्तूके सतोष नहा होता, यहाँतक कि साधारण बगाली भी बिना आध सेर चावलके भातके तृप्त नहीं होते। ये सब अनर्थ केवल इस लिए होते हैं कि वे लोग बाल्यावस्थासे ही अपने घरके बडे बूढोंको बहुत अधिक भोजन करते देखते ह। केवल देखना ही उनके लिए उतना अधिक हानिकारक नहीं होता, जितना उनकी माताओंका आग्रह हानिकारक होता है। गोदके बच्चेको स्त्रियाँ जबरदस्ती अधिक दूध पिलाती हैं, अधिक सयाने बच्चोको मार मारकर और बाँधबाँधकर अधिक भोजन कराया जाता है। बालकका पेट भरा रहता है, उसकी कुछ खानेका इच्छा नहीं होती, पर माता उसे बिना कुछ खिलाये क्यों सोने दे। कभी कभी तो बालकको न खानेके कारण मार तक खानी पडती है। और जब माताये एक छोटा मोटा युद्ध करके अपने बालकोंको कुछ खिलाने पिलानेमें विजय प्राप्त कर लेती हैं तब

उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। वे मनमें समझती हैं कि, हमने अपने बालकोंका बड़ा उपकार किया, और यही उपकार जब अपकाररूपमें प्रकट होता है, बालकको अपच या इसी प्रकारका कोई और रोग हो जाता है तब लोग उनका सहज उपचार करने और उनको स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देनेके बदले उनके साथ एक नया उपकार आरंभ कर देते हैं। औषधके रूपमें तरह तरहके विष उनके पेटमें उतारे जाते हैं, मानो 'विषस्य विषमौषधम्' के सिद्धान्त पर उन्हें अच्छा करनेका प्रयत्न किया जाता है।

अधिक भोजनसे हानियाँ।

अधिक भोजनसे होनेवाली हानियाँ इतनी अधिक हैं कि उनका पूरा पूरा वर्णन करना प्राय असम्भव है। इस सिद्धान्तसे प्राय. सभी बड़े बड़े डाक्टर सहमत हैं। अभी हालमें एक बड़े भारी डाक्टरने कहा था कि, आजकल साधारणत लोग भोजनमें पहले जितने पदार्थोंका सत्यानाश करते हैं उनके तृतीयांशसे भी उनका काम बड़े आनन्दसे चल सकता है। यही नहीं बल्कि पदार्थोंके परिमाणमें जितनी न्यूनता होगी, तरह तरहके असंख्य रोगोंमें भी उतनी ही कमी हो जायगी। जो लोग उक्त मतको बिल्कुल व्यर्थ समझते हों, उन्हें उचित है कि वे स्वयं दो तीन सप्ताहोंतक अपना भोजन घटाकर उसका शुभ परिणाम देख लें। बात यह है कि हम लोग अच्छी तरह जितना भोजन पचा सकते हैं उससे कहीं अधिक उदरस्थ कर लेते हैं। जो अंश पच जाता है उसको छोड़कर बाकीका बिना पचा और अध पचा अंश जब आँतोंके द्वारा नीचे उतरने लगता है, तब उसमेंसे बहुतसे विकृत और दूषित अंश बाहर निकलते हैं और विषके रूपमें परिवर्तित होकर हमारे रक्तमें मिल जाते हैं। उस दूषित अंशके कारण हमारा रक्त बिगड़ जाता है और उससे शरीरमें तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। रक्त बिगड़नेके कारण शरीरमें रोगोंकी उत्पत्ति तो बादमें होती है। सबसे पहले विकारोंका जमघट आँतोंके नीचे पेड़ू आदिमें ही होता है। वहाँ उनमें एक प्रकारका उबाल आरम्भ होता है, जिसके कारण मनुष्यको या तो संग्रहणी हो जाती है या कब्जियत। अब कब्जियत कितने रोगोंकी खान है इसके यहाँ बतलानेकी विशेष

आवश्यकता नहीं है। पैखाने और पेशाबकी शिकायत उत्पन्न होती है, सिरमें दर्द आरम्भ होता है और अंतमें बुखारतककी नौबत आ जाती है। यह बुखार और कुछ नहीं, उन्हीं विकृत पदार्थोंको हमारे शरीरसे बाहर निकलनेका प्रयत्न है। बुखार बिगड़कर जो भयंकर रूप धारण करता है, उससे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। इस प्रकार अनावश्यक भोजनका बचाहुआ दूषित अंश बाहर निकलनेके लिए हमारे सारे शरीरमें चक्कर लगाया करता है और जिस अवयवमें पहुँचता है उसमें एक न एक विकार उत्पन्न कर देता है। आमाशय, हृदय, फेफड़ा, मस्तिष्क आदि सभी अवयव इस दूषित अंशके शिकार बनते हैं और मनुष्यको गठिया, बवासीर, भगंदर, कोढ़, कण्ठमाला और तरह तरहके बुखार अथवा इसी प्रकारके अन्य रोग आ घेरते हैं। यदि दूषित अंश कम हुए तो पहले इन रोगोंके कृमि मात्र ही उत्पन्न होते हैं, जिनको आगे चलकर बढ़ते कुछ देर नहीं लगती। इन्हीं सब कारणोंसे एक बड़े विद्वानने बहुत जोर देकर कहा है कि—" अकालमें अन्नके अभावके कारण उतने लोग नहीं मरते, जितने सुकालमें अधिक अन्न खानेके कारण, तरह तरहके रोगोंसे, मर जाते हैं। "

अधिक भोजन करनेके कारण होनेवाली जो हानियाँ ऊपर बतलाई गई हैं, वे तो ऐसी हैं जिन्हें बहुत से साधारण बुद्धिके लोग भी जानते हैं। बड़े बड़े डाक्टरोंके मतसे अधिक भोजनके कारण मनुष्यके शरीर पर बहुत बोझ पड़ता है और उसे भोजनके अनावश्यक अंशोंको शरीरसे बाहर निकालनेके लिए बड़ा परिश्रम करना और कष्ट उठाना पड़ता है। अधिक भोजनसे शरीर पर चार प्रकारके बुरे प्रभाव पड़ते हैं —

(१) अधिक भोजनसे रक्त अस्वच्छ और विशाक्त हो जाता है, जिससे बहुतसे रोगोंके उत्पन्न होनेकी संभावना हो जाती है।

(२) शरीरमें पहलेसे जो नया या पुराना रोग उपस्थित होता है, अधिक भोजन करनेसे उसका पोषण होता है और वह बढ़ जाता है।

(३) हमारे शरीरके ज्ञान-तन्तुओं (Nervous system) पर अधिक भोजन करनेके कारण बहुत जोर पड़ता है और उनकी सारी शक्ति दूषित अंश

या विषको बाहर निकालनेमें लग जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यके शरीरका बल नहीं बढ़ता और उसका ओज क्षीण होने लगता है।

(४) बिना पचे हुए भोजनका जो दूषित अंश बचा रहता है उसमेंसे विष निकल कर पेट और भेजेमें फैलता है, जिससे मनुष्यकी आरोग्यताका बहुत जल्दी जल्दी नाश होने लगता है।

आवश्यकतासे अधिक भोजनके साथ जितने अनर्थ और अपकार सम्मिलित हैं उतने कदाचित् ही और किसी दूसरे काममें सम्मिलित होंगे। यह भ्रमपूर्ण विचार हमारे मनमें बहुत अच्छी तरह बैठ गया है कि हम जो कुछ खाते हैं वह सब हमारी बल-वृद्धिमें सहायक होता है, उसमेंका कोई अंश वृथा नहीं जाता। यही कारण है कि हम लोग बिना इस बातका विचार किये कि हमें इस समय भोजन करनेकी आवश्यकता है या नहीं, हमारा पेट उसे ग्रहण करने और पचानेके लिए तैयार है या नहीं, दिनमें कमसे कम तीन बार खूब डटकर भोजन कर लेते हैं! इसी भ्रमपूर्ण विचारके कारण लोगोंकी यहाँ तक मिथ्या धारणा हो गई है कि यदि हम एक बारका भोजन भी बीचमें छोड़ दें तो हमारा शरीर ही न चल सकेगा हमारे सिरमें दर्द होने लगेगा, यहाँ तक कि हम चल फिर भी न सकेंगे। हम यदि दिनमें पाँच बार भोजनके करनेकी आदत डालें तो कुछ दिनोंमें ही हर बार भोजनके निश्चित समय पर हमें एक प्रकारकी भूख लग आया करेगी; पर वह कदापि सच्ची भूख नहीं होती, वह बनावटी या कृत्रिम होती है। हम लोग उसी बनावटी भूखके गुलाम बन जाते हैं; इतने गुलाम बन जाते हैं कि हममें उससे पीछा छुड़ानेका साहस ही नहीं रह जाता। आप एक बार भोजन न कीजिए, उससे आपको जो थोड़ा बहुत कष्ट होगा वह तो होगा ही, पर यदि यह बात आपके दोस्तोंको मालूम हो गई तो उन्हें आपका चेहरा 'बिलकुल उदास सूखा हुआ और पीला' दिखाई पड़ने लगेगा। क्यों? इसी लिए कि वे स्वयं भूखके गुलाम होते हैं। अब आप अपनी इच्छासे न सही तो कमसे कम उन दोस्तोंकी खातिर ही थोड़ा बहुत भोजन अवश्य कर लेंगे। पर आगे चलकर उसका जो दुष्परिणाम होगा उसका अनुमान सहजमें नहीं हो सकता।

इस गुलामीसे बचनेका केवल यही उपाय है कि आप अपने मनको दृढ करें। सबसे पहले आपको इस बातका दृढ विश्वास हो जाना चाहिए कि आप बनावटी

भूखकी गुलामीमें पड़े हुए हैं और उसके फन्देमें बच निकलना आपका कर्तव्य है। जब आप यह बात अच्छी तरह समझ लेंगे और भविष्यमें कभी अनावश्यक भोजन न करनेका दृढ सकल्प कर लेंगे, तब आपको बनावटी भूखकी गुलामीसे छूटनेमें अधिक समय न लगेगा। ज्यों ज्यों आप उस बनावटी भूखकी गुलामीसे निकलनेका प्रयत्न करने लगेंगे, त्यों त्यों आपको अधिक आनन्द और सुख होने लगेगा और आप अपने मित्रोंको भी अपना अनुगामी बनाने और कम भोजन करनेके लाभ समझानेका प्रयत्न करने लगेंगे।

आपने कुछ ऐसे लोग भी देखे होंगे जो प्रायः इस बातकी शिकायत किया करते हैं कि हमें तरह तरहके बढ़िया भोजनोंमें भी कोई स्वाद या आनन्द नहीं आता, अथवा आजकल भोजनमें हमारी रुचि नहीं होती। ऐसे लोगोंकी बातोंका वास्तविक तात्पर्य यही होता है कि भोजनका वास्तविक आनद लेनेमें वे नितान्त असमर्थ हो गये हैं। जिस मनुष्यका स्वास्थ्य सब प्रकारसे अच्छा होता है वह जो कुछ खाता है, सब रुचिसे खाता है। उसे अन्तिम कौर भी उतना ही स्वादिष्ट लगता है जितना कि पहला कौर। सब तरहसे नीरोग आदमीकी यही अच्छी पहचान है। तरह तरहकी मसालेदार चटनियों और अचारोंकी आवश्यकता उन्हीं लोगोंको पड़ती है जिनकी पाचनशक्ति किसी प्रकार नष्ट हो जाती है। अच्छी पाचनशक्तिवाले मनुष्यको अथवा वास्तविक भूखके समय बहुत ही साधारण भोजनका भी एक एक कौर अमृतके समान स्वादिष्ट और मीठा जान पड़ता है। और नहीं तो स्वादिष्टसे स्वादिष्ट पदार्थ भी एक प्रकारका बेझा जान पड़ता है और लोग उसे इस प्रकार खाते हैं, मानों वे बड़ी लाचारी या संकटमें पड़े हों। ऐसी अवस्थामें जबरदस्ती ठूसकर भोजन करना ही अच्छा है या उसे छोड़ देना, यह बात विचारवान् पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

रोगमें भोजन ।

मनुष्यके शरीरमें जितने रोग हैं, उनमे बहुत अधिक सख्या ऐसे ही रोगोंकी है जिनका मूल कारण भोजनसम्बन्धी किसी न किसी प्रकारका दोष ही होता है, पर विलक्षणता तो यह है कि उन रोगोंमे भी रोगीको पूर्ववत् भोजन देकर उसके रोगकी वृद्धि की जाती है—व्याधिका मूल कारण और बढ़ाया जाता है। रोगकी सहायता इसी सीमातक परिमित नहीं रहती बल्कि आगे चल कर और नये साधनोंसे भी होती है। रोगीको औषधियोंके नामसे तरह तरहके सूफियाने विष खिलाये जाते हैं जो बहुधा रोगकी दवा तो देते हैं पर उसके मूल कारणको कदापि नष्ट नहीं कर सकते। बहुतसे अवसरों पर तो यह भी देखा गया है कि उनमें और नये नये रोगोंकी सृष्टि होती है। ससारमें दिनपर दिन पुराने रोगोंकी वृद्धि और नये नये रोगोंकी उत्पत्तिमें जितनी सहायता अधिक भोजन और औषधियोंसे मिलती है उतनी और किसी दूसरी बातसे नहीं मिलती।

जब कोई मनुष्य रोगी होता है, उसकी रुचि भोजनकी ओर नहीं होती और उसकी जीभका स्वाद बिगड़ जाता है, तब उसके मित्र, सम्बन्धी और चिकित्सक आदि उससे कहते हैं कि यदि तुम कुछ भी न खाओगे तो तुम्हारा शरीर क्योंकर चलेगा? तुम्हारे शरीरमें बल कहाँसे आवेगा? बिना किसी आधारके तुम जीते क्योंकर बचोगे? आदि। प्राय ऐसे अवसरों पर लोग रोगीको जबरदस्ती कुछ न कुछ खिला दिया करते हैं। पर वे लोग यह समझनेका कष्ट नहीं उठाते कि मुँह और जीभका स्वाद बिगड़ जाने और भोजन करनेकी इच्छा न होनेका वास्तविक अभिप्राय क्या है? उसका वास्तविक अभिप्राय यही है कि रोगीका शरीर भोजनके बोझसे बचना और कुछ सुस्ताना चाहता है। उसके संबधी वैद्यों और डाक्टरोंसे उसकी भूख बढ़ानेका उपाय कराते हैं और चिकित्सक लोग उसे जबरदस्ती भोजन देते हैं। कभी कभी तो रोगीके शरीरमे भोजन पहुँचानेके लिए यन्त्रोतकसे सहायता ली जाती है। बहुतसे वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंकी तो यहाँतक सम्मति होती है कि यदि रोगी कुछ भोजन न करेगा तो पाचनक्रिया करनेवाले रस उसकी उदरस्थ अँतड़ियोंतकको पचा डालेंगे? इनका सिद्धान्त है कि जब मनुष्यको भोजन नहीं मिलता तब उसका पोषण उसके शरीरके भीतरी

माससे होने लगता है; और इस प्रकारका पोषण उसके लिए बिलकुल ही अस्वाभाविक और अत्यन्त हानिकारक होता है। मांसके बाद पचनेके लिए चरबीका नम्बर आता है और तदुपरान्त फेफड़ो और हृदयतन्तुकी नौबत पहुँचती है। मानो हमारा पेट कोई शेर या राक्षस है। कुछ डाक्टरोंका यह भी कहना है कि मनुष्यके लिए पैखाना होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि मनुष्यको पैखाना न हो तो बहुतसे दूषित पदार्थ उसके शरीरके अन्दर ही रह जायँगे और बड़ा उपद्रव तथा अनिष्ट करेंगे। पैखाना बिना कुछ भोजन किये होता नहीं और इस लिए प्रत्येक मनुष्यको नित्य भोजन मिलना बहुत आवश्यक है। एक दूसरे डाक्टरने तो प्रत्येक सशक्त मनुष्यके लिए चौबीस घंटोंमें चार पाँच बार करके कोई दो सेर भोजन करनेकी आज्ञा दी है और कहा है कि यदि मनुष्यको इससे कम भोजन मिलेगा तो उसकी अँतड़ियोंमें एक प्रकारके कीड़े पड़ जायँगे और वह बहुत शीघ्र मर जायगा।

पर वास्तवमें इन सब बातोंका कोई विशेष अर्थ नहीं है। रोगियोंके सम्बन्धमें ये सब सिद्धान्त केवल कल्पित और माने हुए हैं और प्रत्यक्ष अनुभव करने पर जो प्रमाण मिले हैं वे सब इनके विरुद्ध हैं। अमेरिका और युरोपमें बहुतसे बड़े बड़े डाक्टरोंने सैकड़ों और हजारों रोगियोंको डेढ़ डेढ़ और दो दो महिनोंतक बिना किसी प्रकारके भोजनके रखकर अन्तमें उनके रोगोंका समूल नाश कर दिया है, यही नहीं बल्कि उपवास-कालके बीत जानेके उपरान्त बहुत ही थोड़े समयमें वे इतने स्वस्थ और सबल हो गये हैं कि स्वयं उन डाक्टरोंको उन रोगियोंकी दशा देखकर आश्चर्य हुआ है। आप पूछ सकते हैं कि जब मनुष्य दो दो महिनोंतक बिना भोजनके रह सकता है तब एक दो सप्ताहमें ही अकाल आदिके समय हजारों आदमी क्यों मर जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि उपवास करने और भूखों मरनेमें बड़ा भेद है। वास्तवमें उपवास-कालमें मनुष्यका पोषण शरीरके निकम्मे और व्यर्थके बढ़े हुए पदार्थोंके द्वारा होता है। शरीरके मासल भागोंकी बारी बढ़े हुए पदार्थोंके समाप्त हो जानेके कई सप्ताह बाद आती है। उस बीचमें यदि मनुष्यको भोजन न मिले तो वह अवश्य मर जायगा। जिस समय मनुष्यके शरीरको वास्तवमें किसी प्रकारके भोजनकी आवश्यकता हो अथवा उसे कुछ विशेष तत्त्व दरकार हो उस समय उसे भोजन आदि अवश्य मिलना

चाहिए । मनुष्यके शरीरको जिन तत्त्वोंकी आवश्यक्ता होती है यदि उसे वे तत्त्व न मिल कर दूसरे तत्त्व मिले तो भी वह अवश्य मर जायगा क्यों कि उसकी आवश्यक्तायें दूसरे तत्त्वोंसे पूरी नहीं हो सकेंगी आवश्यक तत्त्वोंसे भिन्न चाहे जितने पदार्थ मनुष्यको मिले पर उसका काम उनसे न चलेगा और वह अवश्य मर जायगा । मनुष्यको भूखा मरना उसी समय कहा जा सकता है जब कि उसे वास्तविक भूख लगे और उसे भोजन न मिले । भूखो मरनेवालेकी दूसरी सबसे अच्छी पहचान यह है कि मनुष्योंका पिंजर मात्र बच जाता है । यदि कोई रोगी बिना ठठरीकी अवस्थातक पहुँचे ही बीचमें मर जाय तो उसकी मृत्युका कारण भोजनका अभाव नहीं बल्कि रोगका बढना आदि होगा ।

रोग और चिकित्सा ।

यह तो हुई भोजनकी बात अब चिकित्साको लीजिए । आज कलकी चिकित्साप्रणाली वास्तवमें कैसी है इसका अनुमान केवल दिनपर दिन बढ़ते हुए रोगों और रोगियोंकी बढती हुई सख्यासे ही किया जा सकता है। और इस सख्यावृद्धिका मुख्य कारण औषधियोंकी भरमार है । वैद्यराज अपने रोगीको दिनभरमें तीन तरहकी गोलियां खिला देते हैं दो दो तीन तीन अवलेह चटा देते हैं एकाध चूर्ण तरकारियोंमें मिलाकर खानेके लिए देते हैं और एक चूर्ण इसलिए दे देते हैं कि रोगी उसे दिनमें दस बीस दफे फाँक लिया करे। हकीम साहबके काढे पकानेके लिए तो घरमें एक जुदा चूल्हा ही आवश्यक होता है । गोलियां और तरह तरहकी चटनियाँ इससे अलग होंगी । डाक्टर लोग तो दो दो घंटे पर कडुए मिक्सचरोंके मारे रोगीको और भी परेशान कर देते हैं। ये सब औषधियाँ रोगीके शरीरमें जाकर कुछ समयके लिए रोगको शान्त तो कर देती हैं पर उसका समूल नाश करना नितान्त असमभव होती हैं । आज जो रोग आपको हुआ है वह दस पाँच दिनोंमें औषधियों या अन्य कारणोंसे दब तो अवश्य जायगा, पर साल छह महीनेमें एक नये रोगके साथ वह फिर उभड़ आवेगा । अब आपको एकके बदले दो रोगोंकी चिकित्सा करनी पड़ेगी । यदि किसी कोठरीमें कूड़ा करकट

जमा हो जानेके कारण बहुतसे मच्छड़ और कीड़े मकोड़े पैदा हो जायँ तो हमें केवल इन मच्छड़ों और कीड़ोंको भगाकर ही सन्तुष्ट न हो जाना चाहिए, बल्कि उस कूड़े करकटसे कोठरीको साफ करना चाहिए। रोगोंकी दशा भी बहुत कुछ इसी प्रकारकी है। शरीरमें पहले तो बहुतसा दूषित पदार्थ एकत्र हो जाता है और फिर उससे तरह तरहके ऐसे तत्त्व उत्पन्न होते हैं जो अनेक प्रकारके रोगोंका रूप धारण कर लेते हैं। ओषधियाँ बड़ी कठिनाईसे इन तत्त्वोंका नाश करनेमें तो समर्थ हो जाती हैं, पर शरीरमें एकत्र हुए दूषित अंशकी प्रकारान्तरसे वृद्धि ही करती हैं। सभी ओषधियोंमें लाभदायक अंश बहुत कम और हानिकारक अंश बहुत अधिक होता है। लाभकारक अंश तो ज्यों त्यों रोगसे युद्ध करके उसका शमन करता है, पर हानिकारक अंश शरीरमें रहकर और नये नये रोगोंकी वृद्धिमें सहायता देता है। यह बात नहीं है कि आज कलके अच्छे अच्छे चिकित्सक इस बातको न जानते हों। अब धीरे धीरे लोग रोगके वास्तविक कारण और हजारों तरहकी ओषधियोंकी निरर्थकता समझने लगे हैं।

अब सबसे पहला प्रश्न यह है कि वास्तवमें रोग क्या है? यदि आजकलके चिकित्सकोंसे यह प्रश्न किया जाय तो वे स्पष्टतः यह बात स्वीकार कर लेंगे कि रोगोंके वास्तविक कारण आदिके विषयमें हम लोग नितान्त अनभिज्ञ हैं। उनका उत्तर पाकर हमें यह मानना पड़ेगा कि रोगोंकी वास्तविकता अभीतक घोर अंधकारमें है और फलतः उनके दूर करनेका कोई अच्छा साधन मिलना भी असम्भव है। यदि पाठकोंको हमारे इस कथन पर विश्वास न हो तो वे किसी बहुत अच्छे डाक्टरसे उक्त प्रश्न कर सकते हैं। यदि आप कई अच्छे अच्छे डाक्टरोंसे यह प्रश्न करें तो आप पर हमारे कथनकी सत्यता और भी भली भाँति विदित हो जायगी। कोई डाक्टर अच्छी तरहसे इस विषयमें आपका समाधान नहीं कर सकता कि रोग क्यों और किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, क्यों कुछ लोग सदा रोगी और कुछ नीरोग बने रहते हैं, क्यों एक रोगके बाद तुरत ही उससे बिल्कुल ही भिन्न प्रकारका एक दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है, ओषधियाँ शरीरमें किस प्रकार और कैसा काम करती हैं और पौष्टिक ओषधियोंका हमारे शरीर-सगठन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि अच्छे अच्छे डाक्टर इन विषयोंमें स्वयं ही कुछ नहीं जानते, वे आपके प्रश्नोंका उत्तर क्या देंगे?

आजकल डाक्टरोंके निदानकी बडी तारीफ सुनी जाती है। पर क्या कोई डाक्टर किसी रोगको पहचानकर उसका समूल नाश भी कर सकता है? केवल निदानसे ही काम नहीं चल सकता, चिकित्सकका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि रोग रुके और उसका समूल नाश हो जाय पर जब उसे रोगका मूल कारण ही न मालूम होगा तब वह उन्हें दूर किस प्रकार कर सकेगा? न्यूयार्कके एक बहुत बडे डाक्टरी कालेजके अध्यापक डा० आस्टिन फिल्ट एम डा एल एल, डा ने अपने एक ग्रन्थमें यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर ली है कि रोग और आरोग्यताकी व्याख्या करना बहुत ही कठिन है। एक दूसरे दिग्गज डाक्टरका मत है कि चाहे लोग यह बात सुनकर भले ही हँस दें पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि रोग और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमें हम लोगोंका कोई निश्चित सिद्धान्त ही नहीं है और कमसे कम मेरा यह विश्वास है कि हम लोगोंको इस बातका कुछ भी ज्ञान नहीं है कि शरीर पर औषधियोंका क्या और कैसा प्रभाव पडता है।

इसी प्रकार और भी अनेक बडे बडे डाक्टरोंके कथनोंसे यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि आजकलका चिकित्सक वर्ग रोगोंके वास्तविक स्वरूप और कारणों आदिसे एकदम अनभिज्ञ है। नये डाक्टर जो अभी हालमें कालेजसे निकले हों और जिन्हें किसी प्रकारका अनुभव न हो, भले ही इस बातका गर्व कर सकते हैं कि हम रोगोंके विषयमें सब बात जानते और उन्हें तुरन्त दूर कर सकते हैं, पर कोई अनुभवी चिकित्सक ऐसी बात कभी न कहेगा। एक बडे भारी प्रोफेसरका मत है कि ज्यों ज्यों डाक्टरका अनुभव बढता जायगा त्यों त्यों वह औषधियोंकी निरर्थकता और प्रकृतिकी प्रधानता समझता जायगा। डाक्टर लोग जितने ही अधिक रोगों और रोगियोंको देखते हैं, औषधियोंके गुणों परसे उनका विश्वास उतना ही हटता जाता है।

आजकलका चिकित्सा विज्ञान जब रोगकी वास्तविकता ही नहीं जानता, तब वह उसका इलाज क्या करेगा? जिन रोगोंके विषयमें हम स्वयं कुछ नहीं जानते उन्हें हम दूर कैसे कर सकेंगे? ऐसी अवस्थामें यह मानना पडेगा कि आजकलकी चिकित्साप्रणाली बिल्कुल अटकल पच्चू है और डाक्टर लोग अपने रोगियों पर औषधियोंकी केवल परीक्षा ही करते हैं। रोगों आदिके सम्बन्धमें आजकल जितने नये आविष्कार होते हैं वे सब शुभ और उन्नतिके लक्षण माने जाते हैं, पर

ये ही आविष्कार डाक्टरोंको और भी अधिक भ्रममें डालते हैं—उन्हें ठीक मार्गसे और भी दूर ले जाते हैं।

समस्त संसारके सब प्रकारके चिकित्सक दो मार्गोंमें बाँटे जा सकते हैं। एक भागमें तो होमियो और एलोपैथी आदि प्रणालियों पर चिकित्सा करनेवाले डाक्टर, मिस्मेरिज्म या बिजलीकी सहायतासे चिकित्सा करनेवाले चिकित्सक, यूनानी और मिस्रानी हकीम, वैद्य तथा सब प्रकारके दूसरे चिकित्सक आजाते हैं और दूसरे भागमें हम उन चिकित्सकोंको रखते हैं जिनके सिद्धान्त उक्त सब प्रकारके चिकित्सकोंसे एक दम भिन्न हैं और जो केवल प्राकृतिक उपायोंसे ही रोगोंकी चिकित्सा करते हैं। रोगोंकी उत्पत्ति और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमें इन दोनों श्रेणियोंके चिकित्सकोंका सिद्धान्त एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न है। पहले वर्गके चिकित्सकोंका तो विश्वास है कि रोग हमारे बड़े भारी शत्रु हैं जो हमारे शरीरके भिन्न भिन्न अंगों पर अधिकार करके हमारी शक्तियोंसे युद्ध करते हैं, इन अदृश्य शत्रुओंके लिए हमारी ओषधियाँ, गोलियाँ और गोलोंका काम करती हैं। पर दूसरे वर्गका कहना है कि सब प्रकारके रोग और उनके लक्षण आदि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेमें मित्रभावसे सहायक होते हैं। जब हमारा स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तब हमारे अवयव उसकी सूचना देने और उसे सुधारनेके लिए उन लक्षणोंको उत्पन्न करते हैं, जिन्हें हम रोग कहते हैं।

हमारे शरीरका संगठन ही ऐसा है कि वह यथासाध्य उत्पन्न होनेवाले दोषोंको स्वयं ही दूर करता रहता है। जब हमारे शरीरकी स्वाभाविक स्थितिमें किसी प्रकारकी अव्यवस्था होती है तब उसकी सूचना हमें रोगके रूपमें मिलती है। अच्छे चिकित्सकका यही कर्त्तव्य है कि वह शरीरको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें ले आवे। शरीरके स्वाभाविक स्थितिमें आते ही रोग आपसे आप नष्ट हो जायगा और रोगी चंगा हो जायगा। दोनों वर्गोंकी चिकित्साप्रणालियोंमें अंतर यह है कि एक वर्ग तो रोगोंके नाशके लिए परिश्रम करता है और दूसरा वर्ग रोगीको अच्छा करनेके लिए। एक ही रोगको दूर करनेके लिए कुछ विशिष्ट ओषधियाँ दी जाती हैं, इस बातका ध्यान नहीं रखा जाता कि रोगी पर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त यह है कि रोगको छोड़ कर उसके कारणका नाश किया जाय, जिसमें रोगी अच्छी तरह स्वस्थ हो जाय। ओषधि-

योंसे रोगोंको दबाने, उनका मुकाबला करने और उन्हें मार भगानेका प्रयत्न किया जाता है। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त है कि रोग हमारा स्वास्थ्य सुधारनेके कारण या प्रयत्न होते हैं। उन्हें दवाना या नष्ट करना न चाहिए बल्कि उनके मार्गमें सुविधा उत्पन करके स्वस्थ और नीरोग होजाना चाहिए। यह उद्देश्य बिना किसी प्रकारकी ओषधियोंके ही बहुत अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है।

एक बड़े डाक्टरका मत है कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेवाले साधन हमारे शरीरके बाहर किसी डिबिया या बोतलमें बन्द हैं, वह साधन, वह शक्ति तो स्वय हमारे शरीरके अन्दर है। सब लोग नित्य देखते हैं कि जख्म आपसे आप भरते हैं, पर तो भी वे प्रकृतिके इस गुणको नहीं समझते। * मनुष्यको चाहे किसी प्रकारका रोग हो, उसे किसी प्रकारकी ओषधिकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उससे रोग अच्छा नहीं हो सकता। आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि प्रकृति हमें जिस स्थितितक पहुंचाना चाहता हो, हम स्वय उस स्थितितक पहुंच जायँ। हमें चगा करनेका काम हमारी जीवन-शक्ति स्वय कर लेगी।

गिरने, पड़ने अथवा इसी प्रकारके और कारणोंसे जो चोटें आदि लगती हैं, उनको छोड़कर रोगोंके दो ही मुख्य कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कोई विषाक्त या गन्दा पदार्थ बाहरसे किसी प्रकार हमारे शरीरमें पहुँच जाय या दूसरे यह कि वह स्वयं हमारे शरीरमे पड़े हुए दूषित या निरर्थक पदार्थोंके कारण उत्पन हो। दोनों दशाओंमें उनके कारण हमारे शरीरके कामोंमे रुकावट पड़ती है।

रोग क्या है? केवल उन रुकावटोंको दूर करने और उनके कारण होनेवाली हानिको पूरा करनेके साधन या प्रयत्न हैं। रोग केवल शरीरके दोष दूर करने और उसे शुद्ध बनानेकी एक क्रिया है। हमारी शारीरिक शक्ति स्वय उन रुकाव-

* पहले बड़े बड़े जख्मोंको चगा करनेमें तरह तरहकी ओषधियोंसे सहायता ली जाती थी, पर जब ओषधियाँ निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक सिद्ध हुईं, तब डाक्टरोंको लाचार होकर Dry dressing की शरण लेना पड़ी। आजकल अच्छे डाक्टर जख्मोंको केवल धोकर ऊपरसे पट्टी बाँध देते हैं और इस क्रियासे जख्म बहुत जल्दी भर जाते हैं।

दोंको दूर करने और अपने कामोंमें सुविधा उत्पन्न करनेका प्रयत्न करती है । क्या इस प्रयत्नको जो सब प्रकारसे हमारे लिए हितकारी है, जो हमारे जीवनको बनाये रखनेके लिए होता है, जो हमे शरीरके भीतरी शत्रुओंसे बचाता है, तरह तरहके जहरीले तेजावों, शराब मिली हुई ओषधियों, जुलाबों और भफारों आदिसे रोकने या दबाने आदिकी आवश्यकता है ?

जो बात मनुष्यजातिकी समझमें सैकडों पीढियोंसे दृढतापूर्वक जमी हुई है, वह सहजमें या तुरत ही दूर नहीं की जा सकती । ऐसे अवसरों पर लोगोंमें बहुत अधिक पक्षपात पाया जाता है । जिस प्रकार संगीत, काव्य या किसी और ललित–कलाका पूरा पूरा आनन्द सब लोग नहीं ले सकते, उसी प्रकार किसी विषय पर पक्षपात छोडकर विचार करने और सत्यका पक्ष ग्रहण करनेके लिए भी सब लोग तैयार नहीं हो सकते । बहुधा बातोंकी सत्यताका विश्वास क्रमश ही होता है एकदमसे नहीं हो सकता । साथ ही इस प्रकारके गूढ विषय केवल समझानेसे ही मनमें नहीं बैठ सकते, मनुष्यको उनके अनुकूल आचरण करते करते जब उसका अच्छी तरह अभ्यास पड जाता है, तभी वह उसकी उपयोगिता समझ सकता है, अन्यथा नहीं । इसलिए विचारवान् पाठकोंको इस विषय पर पहले तो अच्छी तरह मनन करना चाहिए और तदुपरान्त परीक्षा और अनुभव करना चाहिए । यदि पाठक पक्षपात छोडकर इस स्थलपर बतलाई हुई बातोंका विचार करेंगे तो हमें आशा है कि उनकी उपयोगिता अवश्य ही उनकी समझमें आ जायगी ।

चिकित्साके दोष ।

यह बात पहले ही बतलाई जा चुकी है कि अनेक कारणोंसे हमारे शरीरमें जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन दोषोंको दूर करनेके लिए हमारी शारीरिक शक्तियाँ स्वय प्रयत्न करने लगती हैं और उसी प्रयत्नके चिह्नोंको हम 'रोग' कहते हैं । दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न शरीरके भीतर आपसे आप होता रहता है । हमें ऊपर उसके लक्षण मात्र दिखाई देते हैं । एक विद्वान्का मत है कि रोगका

ही हमारा स्वास्थ्य बनाये रहता और हमारे प्राणोंकी रक्षा करता है। जो विष हमारे शरीरमें रहकर हमारा बहुत अधिक अनिष्ट कर सकते हैं, उन्हीं विषोंको बाहर निकालनेकी क्रियाका नाम रोग है। बैलेस नामक एक बड़े प्रसिद्ध डाक्टरने हैजेके सम्बन्धमें एक बड़ी पुस्तक लिखी है। उस पुस्तकमें आपने यह बात सप्रमाण सिद्ध की है कि रोगोंको सक्रामक समझ कर उनकी सक्रामकता दूर करनेके लिए आजकल ओषधियो आदिके द्वारा जितने प्रयत्न किये जाते हैं वे ही प्रयत्न रोगोको फैलाने और बहुत अधिक मनुष्योंके प्राण लेनेके कारण होते हैं। जिन दिनों सक्रामकता दूर करनेके लिए इतनी अधिक ओषधियोंका प्रचार नहीं हुआ था, उन दिनों स्वय रोग ही बहुतसे मनुष्योंके प्राण बचा लेता था।

पुराने ढगकी जितनी चिकित्सा-प्रणालियाँ हैं उनमेंसे बहुधा ऐसी ही हैं जिनमें रोगके ऊपरी चिह्नोंको ही रोग समझकर उन्हें नष्ट करनेके प्रयत्न होते हैं। इस प्रकार मानों उस क्रियामें बाधा डाली जाती है जो हमारे शरीरको शुद्ध करनेके लिए होती है। जब हम ओषधियों आदिसे उस क्रियाको रोकने या दबाने आदिका प्रयत्न करते हैं तब उस क्रियामे बड़ी बाधा पड़ती है जो हमारे शरीरके भीतर हमे नीरोग करनेके लिए आप-ही-आप प्राकृतिक कारणोसे होती है। चिकित्सा करके हम उससे जितना लाभ समझते हैं वास्तवमें हमारी उतनी ही हानि होती है। हमें दो एक दिन बुखार आवे और किसी ओषधिकी एक या दो मात्रासे ही हमारा बुखार रुक जाय तो हम यही समझते हैं कि उस ओषधिसे हमारा बड़ा उपकार हुआ। पर वास्तवमें उससे होता हमारा अपकार ही है। हमारे शरीरका जो विष बाहर निकलना चाहता था वह उस ओषधिके कारण रुक गया। आगे चलकर शरीरमे वह जो अनर्थ न करे सो थोड़ा है। यदि वह ओषधि तुरंत ही हमारा बुखार रोक न दे तो भी वह हमारा अपकार ही करेगी, उससे हमारा शरीर बहुधा बिगड़ेगा ही, और हमे अच्छे होनेमे दो चार दिनके बदले महीनों लग जायँगे।

रोगके जिन ऊपरी चिह्नोंको हम रोग समझते हैं वास्तविक रोग उन चिह्नोंका कारण मात्र होता है। यह बात स्वत. सिद्ध है कि हमारी सभी शारीरिक क्रियायें हमारे शरीरके दोषोंको दूर करती हैं। ऐसी दशामे हमें उचित तो यह है कि हम यथासाध्य अपने शरीरको उस स्थितिमें ले जायँ जिसमें हमारी शारीरिक

क्रियाओंको दोष दूर करनेमें पूरा पूरा सुभीता हो। वास्तवमें रोगकी उत्पत्ति उन्हीं विषोंसे होता है जो हमारे शरीरमें एकत्र हो जाते हैं। इन विषोंके एकत्र हो जानेकी सूचना हमें समय समय पर सिरदर्द कब्जियत अथवा इसी प्रकारकी और शिकायतोंसे होती है। बहुधा लोग इस लिए नहीं मरते कि उन्हें रोग हो जाते हैं, बल्कि वे इसलिए मरते हैं कि उनके शारीरिक संगठनको इतना अवसर या सुभीता ही नहीं दिया जाता कि वह उन विषोंको निकाल बाहर करे। इस विषयमें बहुत बड़े बड़े डाक्टर सहमत हैं कि आजकल रोगोंके वास्तविक कारणों पर किसीका ध्यान जाता ही नहीं, सब लोग उनके ऊपरी चिह्नोंको नष्ट करनेमें लगे रहते हैं। मरण और रोग देखनेमें भले ही आकस्मिक जान पड़ें पर वे वास्तवमें आकस्मिक नहीं होते। इन दोनोंके मूल कारणोंकी बहुत बड़ी शृंखला होती है और उस शृंखलाकी अंतिम कड़ी रोग या मृत्युके रूपमें प्रकट हो जाती है।

प्रश्न हो सकता है कि किसी रोगके वास्तवमें नष्ट होनेके लक्षण क्या हैं और उनके कारणोंका निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है? यदि किसी मनुष्यको गठिया हो और उसे तरह तरहके तेल मले जायँ तो रोगीके अंग खुल जाते हैं। उस दशामें यह क्यों न माना जाय कि रोगका वास्तविक कारण नष्ट हो गया? यदि रोगीको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देने अथवा उसे खुली हवामें रखने, पथ्य कराने और स्वाभाविक चिकित्साके इसी प्रकारके दूसरे उपायोंसे वह नीरोग हो जाय तो इसी बातका क्या प्रमाण है कि रोगके वास्तविक कारणका ही समूल नाश हो गया? जिस प्रकार आप कहते हैं कि ओषधियोंसे रोगके चिह्न मात्र दब जाते हैं, उसी प्रकार आपकी चिकित्साके विषयमें भी यह क्यों न कहा जाय कि उससे ऊपरी लक्षण मात्र दबे हैं और रोगका मूल कारण शरीरमें बना हुआ है।

पर थोड़ासा विचार करनेसे इस प्रश्नका उत्तर सहजमें ही निकल आता है। चाहे आप इस बातको स्वीकार करें और चाहें न करें, पर इसमें सन्देह नहीं कि ओषधियाँ रोगके लक्षणोंको ही दूर करनेके अभिप्रायसे दी जाती हैं। पर व्यायाम और पथ्य आदिका उन चिह्नोंपर कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होता। वे केवल हमारे शारीरिक-संगठनके लिए उपकारक हैं। जब बिना उन लक्षणोंको दूर करनेके प्रयत्नके ही उनका नाश हो जाय तो यह बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जायगी

कि, उन लक्षणोंका शरीरमें कोई मूल कारण ही नहीं रह गया। पर ओषधियोंके विषयमें यह बात नहीं कही जा सकती। जो रोग वास्तवमें शरीरको शुद्ध करनेकी क्रिया है उसे हम ओषधियोंसे कैसे चंगा कर सकते हैं? पर उसे स्वाभाविक दशामें छोड़कर और व्यायाम तथा पथ्य आदिसे उसके काममें सहायता देकर हम उस क्रियाको पूर्णता तक अवश्य पहुँचा सकते हैं। जुकाम या सरदी क्या है? छातीके ऊपरके भागमें एकत्र हुए विकार आदिको शरीरसे बाहर निकाल देनेकी क्रिया मात्र है। यदि वह विकार अपने स्वाभाविक मार्ग नाकसे न निकलता तो उसे किसी अस्वाभाविक मार्गका अवलंबन करना पड़ता। फोड़े फुन्सियाँ आदि भी कुछ इसी प्रकारकी क्रियायें हैं, पर उनकी प्रणालियाँ कुछ भिन्न हैं। खाँसी हमारी प्रकृतिका वह प्रयत्न है जो किसी बाहरी अनावश्यक पदार्थको उस स्थानसे बाहर निकालनेके लिए होता है, जहाँ उस पदार्थको रहनेका कोई अधिकार नहीं है। दरद भी इसी प्रकारकी क्रियाका चिह्न मात्र है, वह स्वयं कोई अलग रोग नहीं है। बुखारमें हमारे शरीरके विकार आदि जलाये जाते हैं; पसीनेवाली क्रियासे इसमें भेद केवल इतना ही है कि यह कुछ अधिक प्रखर रूपमें होती है। तात्पर्य्य यह कि नैसर्गिक चिकित्सासबन्धी विशेष बातोंको जाननेके पहले यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि, जिसे हम रोग कहते हैं वह हमें नीरोग बनानेका प्रयत्न मात्र है।

स्वर्गीय सम्राट् सप्तम एडवर्डके चिकित्सक सर फ्रेडरिक ट्रेवेसने एक बार एक व्याख्यानमें कहा था कि आजकलके चिकित्सक चिकित्सा करनेमें बड़ी भूल करते हैं। अगर रोगीको ज्वर हो तो उसका ज्वर रोका जाता है, उसे यदि खाँसी हो तो उसकी खाँसी रोकी जाती है और यदि उसे भूख लगती हो तो जबरदस्ती भूख लगाई जाती है। इस प्रकार हम लोग उस रोगका नाश करनेका प्रयत्न करते हैं जो वास्तवमें हमारे लिए ईश्वरकी बहुत बड़ी देन है और जो सब प्रकारसे हमारा उपकार और रक्षण करता है। यदि संसारमें रोग न होते तो मानव-जाति अबसे बहुत पहले नष्ट हो चुकी होती। आपने अपने कथनके समर्थनमें कई ऐसे रोगोंका जिक्र किया था जिसे रोगी और डाक्टर बड़ा भारी शत्रु समझते हैं, पर वास्तवमें जिनसे मानव-शरीरका बहुत कल्याण होता है।

रोगोंकी एकता ।

इन सब बातों पर विचार करनेसे केवल एक ही परिणाम निकलता है । जब हम यह बात मान लेते हैं कि शरीर अपने भीतरके विकृत और दूषित पदार्थोंको समय समय पर बाहर निकालनेका प्रयत्न किया करता है तब हमें यह भी मानना पड़ता है कि सैकड़ों हजारों तरहके रोगोंका मूल कारण केवल एक ही है । उसी एक कारणका कार्य्य सैकड़ों हजारों रूपोंमें प्रकट होता है । वास्तवमें रोग केवल एक ही होता है और जिन्हें हम रोग मानते हैं वे उसके भेद या रूपान्तर मात्र हैं । जर्मनीके डाक्टर लुई कूनेने इस विषयपर एक बहुत बड़ी पुस्तक * लिखी है जिसमें यह बात भली भाँति सिद्ध की गई है कि रोगोंका वास्तविक और मूल कारण केवल एक ही है । इसके अतिरिक्त और भी बहुत बड़े बड़े डाक्टरोंने एक मत होकर यह बात स्वीकार की है । यदि उन लोगोंके मत और कथन आदि संग्रह किये जायँ तो एक स्वतन्त्र पुस्तक बन सकता है । उन मतोंको उद्धृत न करके हम युक्ति द्वारा ही इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे ।

हमारे शरीरका प्रत्येक अवयव एक दूसरेसे सम्बद्ध है । रक्तका संचारन उन सब अंगोंमें समान रूपसे होता है । इस प्रकार रक्त हमारे सारे शरीरको 'एक' बनाये रहता है । चाहे ऊपरसे देखनेमें यह बात न मालूम पड़े पर वास्तवमें हमारा कोई अङ्ग अकेला ही रोगी नहीं हो सकता । जब कोई एक अंग रोगी होगा तब उसका प्रभाव शेष सब अंगों पर भी कुछ न कुछ अवश्य पड़ेगा । किसी एक अंगको रोगी और शेष सब अंगोंको नीरोग समझना बड़ी भारी भूल है । या तो वह रक्तके कारण और या शारीरिक संगठनके कारण शेष अंगोंको कुछ न कुछ दूषित अवश्य कर देगा । सर्वसाधारण केवल डाक्टरोंके जोर देने पर ही यह बात मानते हैं कि एक अंगके रोगी होनेके कारण शेष अंग रोगी नहीं हो जाते ।

इसी प्रकार बिना शेष सब अंगोंकी क्रियाओं पर प्रभाव डाले हुए हम किसी एक अंगके कामोंमें दखल नहीं दे सकते । हमारा सारा शारीरिक संगठन भिन्न भिन्न अवयवों पर और हमारा प्रत्येक अवयव हमारे शारीरिक संगठन पर इस

* हिन्दीमें भी 'आरोग्यता प्राप्त करनेकी नवीन विद्या' के नामसे उसका अनुवाद हो चुका है ।

प्रकार अवलम्बित है कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध किसी प्रकार छुड़ाया ही नहीं जा सकता। इसी लिए बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि कोई रोग एकांगी नहीं होता। जब मनुष्यके शरीरमें ऊपरी या बाहरी पदार्थोंके कारण कोई दोष उत्पन्न होता है तब उस दोषको दूर करनेके लिए कुछ विशेष शक्तिकी आवश्यक्ता होती है, शरीरको उसके दूर करनेके लिए असाधारण बल लगाना पड़ता है। यदि हमारे शरीरमें वह आवश्यक शक्ति न हो अथवा आवश्यक्तासे कम हो तो वह दोष दूर न हो सकेगा और हमारे शरीरके लिए साधारण स्थितिमें रहना असम्भव हो जायगा। यह दशा जब कुछ अधिक समय तक बनी रहेगी तब वह दोष कोई विशेष रूप धारण करके हमारे किसी अंगमें घर कर लेगा। चोट चपेट लगने, अगोंके विकृत हो जाने अथवा बहुत तेज विष खाये जानेकी अवस्थाओंको छोड़कर शेष सब अवस्थाओंमें रोगोंके जो चिह्न दिखाई पड़ते हैं, उनका मुख्य कारण यही होता है। इसी लिए एकागी रोगोंको अच्छे अच्छे डाक्टर कोई स्वतंत्र रोग नहीं मानते और उनका विश्वास है कि उन रोगोंकी अलग अलग चिकित्सा करनेकी अपेक्षा सारे शरीरकी दशा सुधारना कहीं अधिक उत्तम और लाभदायक है

एकागी रोगोंकी धारणा वास्तवमें अज्ञान और अदूरदर्शिता आदिके कारण ही हुई है। हमारा सारा शारीरिक संगठन एक ही सूत्रमें सम्बद्ध है और उसका इस प्रकार सम्बद्ध होना आवश्यक भी है। आजकल रोगोंको एकागी समझ कर जो चिकित्सा की जाती है वह शरीरके रोगी अगमेंसे या तो वास्तविक रोगके लक्षणोंको दूसरे अगोंमें परिवर्तित कर देती है और या उन्हें वहीं और भीतरी अगोंमें दबा देती है। चिकित्सकोंको इस बातका ध्यान ही नहीं होता कि जिन्हें वे एकागी रोग समझते हैं वे वास्तवमें सारे शरीरके किसी दोषके लक्षण मात्र हैं। रोगोंको एकागी समझ कर उनकी चिकित्सा करना केवल निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक होता है। सबसे अच्छा और उचित उपाय उनके मूलकी ही चिकित्सा करना है। यहाँ कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यक्ता नहीं कि शरीरकी सारी पीड़ाओंकी जड़ रक्तका दोष है और यह दोष उसी चिकित्सासे दूर हो सकता है जिसका प्रभाव हमारे समस्त शारीरिक संगठन पर पड़े, जो हमारे रक्त और शरीरको उसकी साधारण और वास्तविक स्थिति तक ला सके। जब शरीरकी इस प्रकारकी चिकित्सा हो जायगी तब अवश्य ही हमारा प्रत्येक अंग स्वस्थ और

नीरोग हो जायगा । अन्य सिद्धान्तोंकी अपेक्षा यह सिद्धान्त इतना युक्तिसंगत है कि प्रत्येक विचारशील पुरुष इसे तुरन्त ही स्वीकार कर लेगा, और आगे चलकर जब वह इसके अनुसार आचरण करके अनुभव करेगा तब उसपर इस प्रणालीकी उपयुक्तता और भी दृढतासे सिद्ध हो जायगी।

अँगरेजी आदि भाषाओंमें बहुतसा ऐसा साहित्य है जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि ओषधियाँ निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक भी होती हैं, पर स्थानाभावके कारण हम उस विषयको यहाँ नहीं छेड़ते । न जाने ओषधियोंके कारण चंगे होनेकी नष्ट धारणा लोगोंमे कहाँसे और कैसे उत्पन्न हो गई, बहुत सम्भव है कि इसकी उत्पत्ति अज्ञानकालमें ही हुई हो । आजकल जितने अनिष्टकारक विश्वास फैले हुए हैं, इसका नबर उन सबसे चटा बटा है । ओषधियों पर इस प्रकारके मिथ्या विश्वासका कारण यह है कि लोगोको प्रकृति और रोगके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान नहीं है । एक बार जब हमारे विचार इस सम्बन्धमे बदल जायँगे तब पुरानी प्रणालीकी भयकरता आपसे आप हमारी आँखोके सामने नाचने लगेगी । जब हम एक बार रोगका वास्तविक स्वरूप समझ लेगे—जब हमें यह मालूम हो जायगा कि वह स्वय हमारे शरीरको नीरोग करनेकी एक क्रिया है तब हमें ओषधियाँ आदि खाकर उसे दूर करनेकी आवश्यकता ही न रह जायगी । केवल एक इसी सिद्धान्तको अच्छी तरह समझ लेनेके बाद लोग सदाके लिए ओषधि चिकित्साका त्याग और तिरस्कार कर देंगे ।

ओषधियोंका प्रभाव ।

साधारणत सब लोग यही समझते हैं कि ओषधियोंसे रोग दूर हो जाते हैं । ओषधियाँ इसी उद्देश्यसे दी जाती हैं और इसी उद्देश्यसे खाई जाती हैं । रोगोंके सम्बन्धमें लोग यही समझते हैं कि ओषधियोंकी सहायतासे हम उन्हें दबा, निकाल या नष्ट कर सकते हैं । मनुष्यकी यह मिथ्या धारणा बहुत प्राचीन कालमें हुई थी और वही धारणा अब तक बराबर चली आती है । पर विज्ञान तथा आरोग्यता शास्त्रके आजकलके नये सिद्धान्तोंने उस धारणासे होनेवाले दोष ढूँढ़ निकाले हैं । आजकलके तर्क और युक्ति-वादके सामने ओषधियोंकी

उपयोगिता नहीं ठहर सकती। इस स्थलपर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि औषधियाँ वास्तवमें क्या हैं, हमारे शरीर पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है और बड़े बड़े डाक्टरोंकी उनके सम्बन्धमें क्या सम्मतियाँ हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि औषधियाँ विष हैं। या तो वे स्वयं विष होती हैं और या हमारे शरीरके अन्दर पहुँच जानेके कारण ही विष हो जाती हैं। इस सम्बन्धमें इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि भोजनके अतिरिक्त शेष जितने पदार्थ हमारे शरीरके अन्दर प्रवेश करते हैं वे सब विष हैं। सुप्रसिद्ध डाक्टर ट्रालका मत है कि सब प्रकारकी औषधियाँ चाहे वे खनिज हों, पशुजन्य हों अथवा वनस्पति जन्य हों विषके सिवा और कुछ नहीं हैं। जिस वस्तुसे हमारे शरीरका पोषण नहीं हो सकता वह हमारे शरीरके लिए कभी लाभदायक नहीं हो सकती। एक विद्वान्का मत है कि संसारमें क्रमश जीव, वनस्पति, खनिज पदार्थ और तत्त्व हैं। इनमेंसे प्रत्येकका धर्म्म है कि वह अपनेसे उच्चतरका पोषण करे। खनिज पदार्थोंसे ही वनस्पतिका पोषण हो सकता है, वनस्पतिसे खनिज पदार्थोंका कोई उपकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार वनस्पति ही जीवका पोषण कर सकती है, जीवोंसे वनस्पतिका पोषण नहीं हो सकता। वनस्पतिसे भिन्न जितने जड पदार्थ हैं वे कभी जीवोंके शरीरमें जाकर उनका कोई उपकार नहीं कर सकते। इसी लिए खनिज अथवा अन्य जड पदार्थ हमारे शरीरमें पहुँचते ही उसके लिए विष हो जाते हैं। इस सिद्धान्तको आजकलके विज्ञानने बहुत अच्छी तरह मान लिया है और उसकी सत्यतामें किसी प्रकारका विवाद नहीं रह गया। औषधियों द्वारा चिकित्सा करनेवाले लोग तो रोग दूर करनेकी कामनासे रोगीके शरीरमें और भी अधिक विष प्रविष्ट करा देते हैं, वे रोगको क्या दूर करेंगे। इस प्रकार औषधियोंसे रोगीकी दशा और भी बुरी हो जाती है।

जो पदार्थ हमारे शरीरमें पहुँचकर नियमित रूपसे नहीं पच सकता और जिससे हमारे शरीरका पोषण नहीं हो सकता, वह पदार्थ अवश्य ही हमारे शरीरके लिए विजातीय और फलत विष है। हमारे शरीरके लिए औषधियाँ या तो स्वयं विजातीय होती हैं और या रूप परिवर्त्तनके कारण विजातीय बन जाती हैं और इसी लिए उनसे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँचती है। जो पदार्थ हमारे शरीरके

लिए इसप्रकार हानिकारक हैं उन्हें जानबूझकर और वह भी रोग दूर करनेके उद्देश्यसे, शरीरके भीतर पहुँचाना कहाँकी बुद्धिमत्ता है ?

पर प्राकृतिक चिकित्सामें यह बात नहीं है। वह स्वयं हमारी शारीरिक शक्तियोंमें ऐसा परिवर्तन कर देती है कि वे सब प्रकारके विषोंको अनायास ही नष्ट करके उनका शेष अंश बाहर निकाल देती हैं। किसी साधारण दरदको लीजिए। डाक्टरी चिकित्सामें उसे दूर करनेका सिद्धान्त बहुत ही विलक्षण है। शरीरके किसी अंगमें पीड़ा होती है, वह पीड़ा चाहे जिस प्रकार हो दूर होनी चाहिए। उसे दूर करनेके लिए पिचकारियोंके द्वारा पीड़ित अंगमें अफीमका सत या इसी प्रकारका और कोई विष पहुँचाया जाता है। अंग जड़ हो जाता है, पीड़ा छूट जाती है, डाक्टर समझता है कि रोगी अच्छा हो गया और रोगी समझता है कि रोग जाता रहा। पीड़ा शान्त हो जानी चाहिए, फिर उसके कारणोंका पता लगाने और उन्हें दूर करनेमें मतलब ?

पर क्या आप इसे वास्तवमें चिकित्सा कह सकते हैं ? इसमें रोगके लक्षण मात्रको दबा देने और साथ ही शरीरके अन्दर बहुतसा विष पहुँचा देनेके अतिरिक्त और क्या होता है ? पीड़ा वास्तवमें किसी शारीरिक दोषका चिह्न होनी चाहिए। प्रकृति मूर्ख नहीं है, उसमें बिना किसी कारणके कार्य्य नहीं हो सकता। यदि शरीरके किसी अंगमें पीड़ा उत्पन्न हो तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा, चाहे हमें उस कारणका पता चले और चाहे न चले।

पीड़ा तो किसी दोषका चिह्न मात्र है वह स्वयं कोई चीज नहीं है। क्या इस चिन्ह मात्रको दबा देनेसे उसके कारणका भी नाश हो सकता है ? कभी कभी दरद दूर करनेके लिए अंगोंमें छाले डाले जाते हैं और कभी फस्द खुलवाई जाती है। हमारी प्रकृति तो जोर जोरसे चिल्लाकर हमें दोषोंकी सूचना दे और हम गला घोंट कर उसे चुप करायें ! हमारा ज्ञान-तन्तु तो हमें सूचना दे कि हमारे शरीरमें शत्रु आ पहुँचा है और दरदकी भाषामें वह हमसे सहायता माँगे और चिकित्सक तरह तरहके विषों और अत्याचारोंसे उसका मुँह बन्द करके कहे कि मैंने रोगीको चंगा कर दिया ! यह रोगीके प्राण लेकर उसे नीरोग करना नहीं तो और क्या है ? इस सम्बन्धमें डा० ट्रालने अपने एक ग्रन्थमें लिखा है—"औषधियोंसे और नये रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिए औषधि देना मानों एक और रोग उत्पन्न

करना है। ओषधियोंसे एक रोग तो अवश्य दब जाता है पर और अनेक रोग उत्पन्न भी हो जाते हैं। क्या कारणोंसे कारण दूर हो सकते हैं? क्या विष निकालनेमें विष सहायक हो सकता है? क्या विकारोंसे विकार नष्ट हो सकते हैं? क्या प्रकृति एककी अपेक्षा दो दोषोंसे सहजमें दूर कर सकती है? कदापि नहीं।" विषोंसे रोगोंको अच्छा करनेकी आशा रखना भूतोंसे मुरादें माँगना है।

दस्त, कै, या पसीना आदि लानेवाली दवाओंके विषयमें अवश्य ही यह कहा जा सकता है कि वे बहुतसे विकृत पदार्थ शरीरसे बाहर निकाल देती हैं, पर उनका भी कुछ न कुछ दूषित अंश शरीरमें रह ही जाता है। जुलाब लेनेसे लाभके अतिरिक्त होनेवाली हानियाँ भी कम नहीं हैं। इन हानियोंका अनुभव उन लोगोंको और भी अच्छी तरह हो जाता है जो सालमें एक या दो बार नियमित रूपसे जुलाब लेनेके अभ्यस्त हो जाते हैं। दस्त, कै या पसीने आदिके मार्गसे जो विकार ओषधियोंकी सहायतासे शरीरके बाहर निकाला जाता है वही विकार जल-चिकित्साके कई उपायोंसे भी, शरीरको बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये ही निकाला जा सकता है।

औषधियोंके विषयमें यह कहा जाता है कि वे शरीरके भीतर उसके भिन्न भिन्न अंगों—मस्तक, पेट, आँत, गुरदे, जिगर, चमड़े आदि—पर अपना प्रभाव डालती हैं और उनके द्वारा दस्त, पेशाब, पसीने, या कै आदिके रूपमें शरीरके विकृत पदार्थोंको बाहर निकालती हैं। पर डाक्टर टालका मत है कि, ओषधिका शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तवमें हमारी प्रकृति स्वयं उन्हीं ओषधियोंको जितने सहज मार्गसे शरीरके बाहर निकाल सकती हैं, निकाल देती हैं, और लोग उन्हीं औषधियोंको उन अंगो पर प्रभाव डालनेवाली बतलाते हैं। जिस ओषधिको हमारी प्रकृति कै द्वारा सहजमें बाहर निकाल सकती है वह औषधि कै लानेवाली समझी जाती है और जिस ओषधिको हमारी प्रकृति दस्तोंके द्वारा बाहर निकालना उत्तम समझती है उसीको लोग दस्तावर समझ लेते हैं। वास्तवमें ओषधियोंका शरीर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। *

स्थानाभावसे इस सम्बन्धमें यहाँ प्रमाण आदि नहीं दिये जा सकते हैं। जो लोग प्रमाण आदि जानना चाहें वे डा॰ ट्राल कृत "water cure for the millions" नामक ग्रन्थ देख सकते हैं,—लेखक।

पौष्टिक औषधें।

जिस समय लोग अपने आपको रोगी नहीं समझते उस समय भी वे अपनी दुर्बलता दूर करने और बल बढ़ानेके लिए तरह तरहकी पौष्टिक औषधियाँ खाते हैं। युरोप अमेरिका आदिमें पौष्टिक औषधोंका मुख्य और सार-भाग स्पिरिट या एलकोहल होता है और इस देशमें अफीम आदि। तात्पर्य यह कि सभी स्थानोंमें किसी न किसी प्रकारका मादक विष ही शक्ति-वृद्धिके लिए अनेक रूपोंमें खाया जाता है। अन्य औषधोंकी अपेक्षा पौष्टिक औषधियाँ मनुष्यके शरीरको और भी अधिक हानि पहुँचाती हैं। साधारणतः लोगोंकी यह धारणा है कि ऐसे मादक द्रव्योंका शरीर पर प्रभाव पड़ता है पर वास्तवमें होता यह है कि, शरीरको बलपूर्वक उन विषोंका विरोध करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि आपको बहुतसे ऐसे दुबले पतले आदमी मिलेंगे जो यह कहते हों कि अमुक पौष्टिक औषधने बहुत गुण दिखाया और मैं उसके सेवनसे बराबर अच्छा हो रहा हूँ। पर सच पूछिए तो उनके शरीर पर उन औषधियोंका प्रभाव बिल्कुल उलटा पड़ता है। पौष्टिक औषधके सेवनके समय और उससे कुछ समय बाद तक तो मनुष्य अपने आपको अवश्य अच्छा समझता और कई कारणोंसे वह कुछ अच्छा भी हो जाता है, पर उनका अन्तिम परिणाम बहुत ही नाशक होता है। परीक्षासे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मादक द्रव्योंसे न तो मस्तिष्क पुष्ट होता है और न रग पट्ठे आदि। जब पौष्टिक पदार्थोंका सेवन आरम्भ किया जाता है तब कुछ समयके लिए उनमेंके मादक द्रव्य दुर्बल अंगोंको फुरतीला बना देते हैं और चित्तको थोड़ा बहुत प्रफुल्लित कर देते हैं, पर शरीरके अंगोंका वास्तविक पोषण उनसे हो ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मादक द्रव्योंमें एक और गुण होता है जिसका परिणाम कुछ दिनों बाद मालूम होता है। वह हमारे शरीरके बहुतसे आवश्यक द्रव्योंका बुरी तरह नाश करते हैं और फलतः शरीरके लिए बहुत ही घातक होते हैं। इस प्रकार पौष्टिक औषधोंका प्रभाव हमारे शरीर पर दो प्रकारसे पड़ता है। एक बार तो वे कुछ समयके लिए अपने उत्तम गुण दिखलाती हैं और तदुपरान्त सदा शरीरमें घुन या विषकी तरह बनी रहती हैं। एक बड़े डाक्टरने ऐसी औषधोंकी उपमा जलती हुई आगसे दी है। आग जिस समय जलती है

उस समय उसका दृश्य तो बहुत भला मालूम होता है, पर उसके जल-बुझनेके बाद राख ही राख बच रहती है !

बहुतसे लोगोंका यह विश्वास है और अनेक डाक्टर और वैद्य आदि भी यही कहा करते हैं कि पौष्टिक औषधें पाचन शक्तिको बढ़ाती हैं; पर यह विश्वास भी बहुत ही भ्रमपूर्ण और मिथ्या है। पाचन शक्तिका जितना अधिक नाश मादक द्रव्योंसे होता है, उतना और दूसरे द्रव्योंसे हो ही नहीं सकता। शराब पीने या अफीम आदि खानेवाले लोगोंकी पाचन-शक्ति सदा बहुत मन्द रहती है। बहुधा शराबी रातको शराब पीनेके बाद दूसरे दिन या तो भोजन नहीं करते और या बहुत थोड़ा भोजन करते हैं। अफीमची तो सदा ही बहुत कम खाया करते हैं। भारतमें बहुधा अपढ़ ब्राह्मण निमन्त्रण आदिके समय खूब भाँग पीते हैं। यह ठीक है कि कुछ लोगोंको भाँग पीने पर बहुत भूख लगती है और व सेरो अन्न खा जाते हैं, पर वही भाँग पीनेवाले सदा इस बातकी शिकायत करते हुए भी देखे जाते हैं कि भाँग खिला तो बहुत कुछ देती है, पर पचा कुछ भी नहीं सकती। पचावे कहाँसे? मादक द्रव्योंसे तो पाचन क्रियामें बाधा मात्र होती है। एक डाक्टरने तो एल्कोहलकी केवल इसी लिए निन्दा की है कि उससे भूख तो घट जाती है पर खाया हुआ पदार्थ नहीं पचता।

मादक द्रव्योंका एक यह भी गुण बतलाया जाता है कि उनसे शरीरमें गरमाहट रहती है, पर यह कथन भी नितान्त निरर्थक है। डाक्टर रिचर्डसने मद्यपान पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें एक स्थान पर आपने लिखा है—" किसी पशुको कोई मादक द्रव्य खिलाकर उसके शरीरकी परीक्षा कीजिए तो आपको मालूम हो जायगा कि मादक द्रव्यने उस पशुके सारे शरीरकी उष्णता कम कर दी है। उसके शरीरके ऊपरी भागमें अवश्य थोड़ी बहुत गरमी जान पड़ेगी, पर वास्तवमें इस गरमीका मुख्य कारण यह है कि उस समय सारा शरीर ठंढा होता जाता है। हृदयसे कुछ गरम खून चलता है और शरीरकी ऊपरी तहके पास पहुँच कर उसे अपनी उष्णता त्यागने और शरीरको ठंढा करनेके लिए विवश करता है। फल यह होता है कि शारीरिक शक्तियाँ मन्द पड़ जाती हैं। अंग ढीले हो जाते हैं, जो हृदय आरम्भमें जल्दी जल्दी चलता था वह जकड़ जाता है। जो मस्तिष्क पहले उत्तेजित हो उठा था वह अब बेराम हो जाता है और मन दुर्बल हो जाता है।"

तात्पर्य यह कि मादक द्रव्योंसे हमारे शरीरका किसी प्रकार पोषण नहीं हो सकता और न वैज्ञानिक दृष्टिसे मनुष्य अपने शरीरके लिए उसका उपयोग कर सकता है। एक डाक्टरका मत है— "मादक द्रव्य हमारे शरीरमें प्रवेश करके बहुत उपद्रव करते हैं और अन्तमें अपना बहुत कुछ दुष्परिणाम बाकी छोड़ कर स्वयं ज्योंके त्यों हमारे शरीरसे बाहर निकल जाते हैं। वे द्रव्य कभी पच नहीं सकते और न शरीरमें पहुँचने पर उनमें किसी प्रकारका परिवर्तन होता है।" *

मादक द्रव्योंसे जिन्हें हम पौष्टिक समझ कर खाते हैं हमारे शरीरका वास्तवमें बहुत कुछ अपकार होता है। हम उन्हें जितना पौष्टिक समझते हैं, वे वास्तवमें उतने ही घातक होते हैं। मादक द्रव्य हमारे शरीरके भीतर पहुँच कर उसकी शक्तिका नाश आरम्भ करते हैं। यदि थोड़ी मात्रामें कोई मादक द्रव्य हमारे शरीरमें पहुँच जाय तो उसका आक्रमण रोकनेके लिए हमारे शरीरको कम परिश्रम करना पड़ता है,—थोड़ी शक्ति लगानी पड़ती है, और यदि उसकी मात्रा अधिक हो तो हमारे शरीरको भी उतना ही अधिक बल लगाना पड़ता है। उस घातक द्रव्यसे अपना पिंड छुडानेके लिए हमारे शरीरको जितना अधिक बल लगाना पड़ता है उसीको हम भ्रमसे बल-वृद्धि समझ लेते हैं। मादक द्रव्योंमेंसे कोई नई शक्ति निकल कर हमारी शक्तिमें मिल नहीं जाती, उससे तो हमारा पुरानी शक्ति भी क्षीण होने लगती है। क्योंकि उसे शरीरसे बाहर निकालनेमें हमें अपनी बहुतसी शक्तिका वृथा उपयोग करना पड़ता है।

बहुतसे डाक्टर आदि मादक द्रव्योंके इन दोषोंको जानते हुए भी कहते हैं कि बहुत दुर्बल लोगोंके लिए पौष्टिक औषधें लाभदायक होती हैं, उनसे दुर्बलोंका बल बढ़ता है। पर वे लोग यह विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझते कि जो पदार्थ सबल और नीरोग पुरुषोंको इतनी हानियाँ पहुँचाते हैं, वे ही दुर्बलोंका क्या उपकार कर सकेंगे। मादक द्रव्य तो विष हैं, उनका प्रभाव और कार्य सदा घातक ही होगा। सबलों और नीरोगोंकी अपेक्षा दुर्बलों और रोगियों पर तो उनका प्रभाव और भी बुरा होगा।

---

* जो लोग इस सम्बन्धमें और अधिक बातें जानना चाहते हों उन्हें डा० ट्राल्की लिखी हुई "The true temperance Plat-form" और "The Alcoholic controversy" नामक पुस्तकें देखनी चाहिए।

औषधों पर कुछ सम्मतियाँ ।

ऊपर जो लिखा गया है उसे पढ़कर प्रत्येक समझदार आदमी अच्छी तरह समझ लेगा कि औषधोंसे मनुष्यके शरीरमें केवल नये रोग ही पैदा होते हैं। उक्त बातें केवल मन गढ़न्त ही नहीं हैं बल्कि बड़े बड़े डाक्टरोंके अनुभवका सार हैं। इस स्थान पर औषधोंके सम्बन्धमें कुछ बड़े बड़े डाक्टरोंकी सम्मतियाँ सक्षेपमें दे देना अनुचित न होगा । नीचे जिन डाक्टरोंकी सम्मतियाँ दी गई हैं वे डाक्टर बड़े बड़े डाक्टरी कालेजोंके अध्यापक हैं और बहुत दिनोंसे औषधो द्वारा ही चिकित्सा करते हैं। अत औषधोंके दोष सिद्ध करनेके लिए उनके कथनसे बढ़कर और कोई प्रमाण नहीं हो सकता ।

डा० स्टेफेन्स कहते हैं कि नया डाक्टर समझता है कि मेरे पास प्रत्येक रोगके लिए बीस औषधें हैं, पर तीस वर्ष तक चिकित्सा करनेके बाद उसकी समझमें आता है कि प्रत्येक औषधसे बीस रोग उत्पन्न होते हैं। इस उन्नत कालमें भी रोगियोंकी यातना पहलेकी तरह ही ज्योंकी त्यों है" । इसका कारण यही है कि डाक्टर लोग प्रकृतिका मनन न करके अपने पूर्वजोंके लेखोंका ही अध्ययन करते हैं। प्रो० पेनका मत है कि शरीरमें औषधें भी वही काम करती हैं जो काम स्वय रोगोंके कारण करते हैं। अधिक औषध भी रोग ही उत्पन्न करती है। एक स्थल पर आपने यह भी कहा है कि एक नया रोग पैदा करके हम पहलेवाले रोगको अच्छा करते हैं।

प्रो० क्लार्क कहते हैं,—चिकित्सकोंने रोगियोंको लाभ पहुँचानेकी धुनमें उल्टे बहुत कुछ हानि पहुँचाई है। उन्होंने हजारों ऐसे रोगियोंके प्राण लिये हैं जो यदि प्रकृति पर छोड़ दिये जाते तो अवश्य नीरोग हो जाते। जिन्हें हम औषध समझते हैं वे वास्तवमें विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रासे रोगीका बल घटता है। प्रो० कान्सका मत है कि रोगीको जितनी ही कम औषधें दी जाँय उसका उतना ही अधिक उपकार होता है। प्रो० स्मिथने कहा है—औषधोंसे कभी रोगी अच्छे नहीं होते, उन्हें स्वय प्रकृति अच्छा करती है। डा० रशने लिखा है—चिकित्सकोंने रोगोंकी सख्या और साथही उनकी भयकरता भी बढ़ाई है। डाक्टर सेडलर

कहते हैं कि एलकोहल और दूसरी बहुतसी औषधियाँ केवल रोग ही उत्पन्न करती हैं। औषधोंसे शारीरिक शक्तिका नाश होता है।

प्रो० पारस्रने कहा है–मैंने कई रोगोंमें औषधियोंका प्रयोग नहीं किया जिसका फल बहुत ही अच्छा हुआ। अब मुझे निश्चय हो गया है कि औषधियोंकी अपेक्षा प्रकृतिने मनुष्यके नीरोग होनेमें बहुत सहायता मिलती है।

भारतमें बहुत दिनोंसे माता या चेचकका कभी कोई इलाज नहीं किया जाता। पर पाश्चात्य डाक्टरोंने यह तत्त्व बहुत हालमें समझा है। तो भी जब चेचकका बहुत अधिक प्रकोप होता है तब बहुधा डाक्टर कुछ चिकित्सा आरम्भ कर देते हैं। अमेरिकाके एक प्रान्तके हेल्थ आफिसर डा० स्लोने अपने देशके डाक्टरोंको एक समाचार पत्र द्वारा यह सूचना दी थी कि मैंने बिना किसी प्रकारकी औषधिके उपयोगके ही माताके बड़े बड़े रोगियोंको बिल्कुल चंगा कर दिया है। डा० एम्सने बहुतसे रोगियोंके मरनेपर उनकी लाशोंको चीरकर देखा तो उन्हें शरीरके भीतरी भागोंमें अनेक ऐसे रोग मिले जिन्हें औषधिजन्यके अतिरिक्त और कुछ कह ही नहीं सकते थे। इस कारण उन्होंने औषधियोंका व्यवहार छोड़ दिया। जबसे वह प्राकृतिक चिकित्सा करने लगे तबसे उनका एक भी रोगी न मरा और परीक्षाके लिए उन्हें शव मिलना कठिन हो गया।

डा० ओलेरोका मत है कि रोगोंका नाश करनेमें सबसे अधिक सहायता उन्हीं लोगोंसे मिली है जिन्होंने किसी डाक्टरी कालेजकी कोई परीक्षा नहीं दी है और न कोई डिप्लोमा पाया है। अनेक प्रकारकी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सायें ऐसे ही लोगोंकी निकाली हुई हैं, जो चिकित्सा-शास्त्रसे एकदम अनभिज्ञ थे। प्रो० एमसनका मत है कि चिकित्सा–सम्बन्धी बहुतसी कामकी बातें हम लोगोंको साधारण आदमियोंसे ही मिलती हैं, हम लोग तो खाली ग्रीक और लैटिन नाम रखना जानते हैं। डा० होम्स कहते हैं–औषधियाँ आदि तैयार करनेके लिए, द्रव्य निकालकर व्यर्थ खाने खाली की जाती हैं, वनस्पतियोंका सत्यानाश किया जाता है और सांपोंके जहर निकाले जाते हैं। अगर सब औषधियाँ समुद्रमें फेंक दी जातीं तो मनुष्यजातिका बड़ा उपकार होता। हाँ, मछलियोंको उससे अवश्य बहुत हानि पहुँचेगी। डा० पैड्रिक लिखते हैं–अजुमाकी कमेटी पर औषधियाँ पूरी नहीं उतरती हैं। दिन पर दिन उनकी निरर्थकता ही सिद्ध होती जाती है।

जीवनके किसी प्राकृतिक विकारके विरुद्ध किसी ओषधिका प्रयोग करना दिल्लगी नहीं तो और क्या है ? ज्यों ज्यों डाक्टर और रोगी समझदार होते जाते हैं, त्यों त्यों वे समझते जाते हैं कि ओषधियों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

ऊपर जितने डाक्टरोंके नाम दिए गए हैं, वे सब अमेरिकाके हैं। अब अँगरेजी साम्राज्यके कुछ डाक्टरोंकी सम्मतियाँ सुनिए। डा० इवान्स कहते हैं कि इस उन्नति कालमें भी औषधियोंके गुण निश्चित और सन्तोषप्रद नहीं हैं। डा० अबरनदी कहते हैं कि चिकित्सकोंकी संख्या बढ़नेके साथ रोगोंकी संख्या भी उसी मानमें बढ़ती जाती है। सर मिचलका मत है कि रोगोंके मूल कारण तक ओषधियाँ पहुँच ही नहीं सकतीं। डा० राबिन्सनका कथन है कि आज कलके व्यवहारमें औषधिका गुण विज्ञान, प्रारब्ध और भ्रमके विलक्षण मिश्रण पर अवलम्बित है। डा० कूपरका सिद्धान्त है कि ओषधियोंपर जिसका जितना विश्वास हो उसे उतना ही अज्ञानी समझना चाहिए। लंदनके रायल कालेजके फेलो डा० रैमुजे कहते हैं कि आजकलकी ओषधि-चिकित्सा बड़े बड़े प्रोफेसरोंके लिए बहुत ही लज्जास्पद होनी चाहिए। विचार करके देखिये कि हमारी ओषधियोंसे कितना कम लाभ होता है और रोगीकी दशा कितनी अधिक बुरी हो जाती है। मैं निर्भय होकर कह सकता हूँ बिना चिकित्साके रोगीकी दशा अपेक्षाकृत बहुत अच्छी रहती है। प्रोफेसर जेम्सन कहते हैं कि विज्ञानके नामपर आजकलके चिकित्सा करनेवाले प्रकृति और रोगीकी वास्तविक चिकित्सा-प्रणालीसे एकदम अनभिज्ञ होते हैं। इसमें नौ ओषधियाँ रोगियोंके लिए बहुतही हानिकारक होती हैं। डब्लिन मेडिकल जरनलमें एकबार प्रकाशित हुआ था कि आजकल जिसे चिकित्सा-विज्ञान कहते हैं, वह नामको भी विज्ञान नहीं है। वह तो अटकलपच्चू सिद्धान्तों, भ्रमपूर्ण कल्पनाओं और अस्थिर सम्मतियोंका खज़ाना है। सर फोर्ब्सका मत है कि रोग या चिकित्साके सम्बन्धमें अभीतक कोई सिद्धान्त ठीक नहीं निकला। कुछ रोगी ओषधियोंकी सहायतासे अच्छे होते हैं, बहुतसे रोगी ओषधियाँ खाकर भी केवल आपसे आप ही अच्छे हो जाते हैं, और बहुत अधिक रोगी बिना किसी प्रकारकी औषधिके ही अच्छे हो जाते हैं। डा० फ्रौंकको डाक्टरोंके हाथसे इतने अधिक रोगियोंको मरते हुए देखकर अंतमें कहना पड़ा था कि सरकार या तो इन डाक्टरोंको न रहने दे और उनको नष्ट

चिकित्साप्रणाली रोक दे और या लोगोंके जीवनकी रक्षाका कोई नया उपाय निकाले। डा० वोस्टक, जिन्होंने "औषधियोंका इतिहास" नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है, कहते हैं—हम औषधियोंका जितना अधिक प्रयोग करते हैं, हमारा ज्ञान या अनुभव उतना अधिक नहीं बढ़ता। औषधिकी प्रत्येक मात्रा रोगीकी सजीवनी शक्ति पर एक अन्य प्रयोग और अनुभव मात्र है। डा० सर जानगुड, जिन्होंने प्रकृति और औषधि आदिके सम्बन्धमें कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं, कहते हैं—हमारी औषधियोंका प्रभाव अत्यन्त अनिश्चित है। युद्ध, महा-मारी और अकाल आदिके कारण अब तक सब मिलाकर जितने मनुष्य मरे हैं, उनसे कहीं अधिक औषधियोंके प्रयोगसे मरे हैं। प्रो० वाटरहाउस कहते हैं कि शिक्षित चिकित्सकोंकी अपेक्षा उन अशिक्षित चिकित्सकोंपर मेरा कहीं अधिक विश्वास है जिनकी चिकित्सा केवल अनुभवपर निर्भर होती है। सभी देशों और समयोंमें उन लोगोंने समस्त विश्वविद्यालयोंसे कहीं अधिक बढ़कर काम किया है। डाक्टर जान्सन जो चिकित्सा-सम्बन्धी एक प्रतिष्ठित पत्रके सम्पादक हैं, कहते हैं—अपने बहुत दिनोंके अनुभवसे मैं यह बात कह सकता हूँ कि यदि संसारमें कोई चिकित्सक, जर्राह, अत्तार या दवा बेचनेवाला न होता तो आजकलकी अपेक्षा रोग बहुत ही कम हो जाते और मृत्यु-संख्या भी बहुत घट जाती। * पेरिसके डाक्टर लेगोल कहते हैं—इस समय हम लोग बड़ी ही भूल कर रहे हैं और यदि हम सफलता प्राप्त करना चाहते हों तो हमें अपना मार्ग बदल देना चाहिए।

एडिनबरामें प्रोफेसर जान कर्क नामक एक चिकित्सक हैं, जिन्होंने चालीस वर्षोंतक चिकित्सा करनेके उपरान्त औषधियोंकी निरर्थकता समझी और तब बिना औषधियोंके चिकित्सा आरंभ की। आपका मत है कि, डाक्टरी कालेजोंमें

* एक बार एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक उत्तरीय ध्रुवके आसपासके प्रदेशोंसे लौट कर आया था। उसके एक मित्रने उससे कहा—"बड़े आश्चर्यकी बात है कि आप कहते हैं कि उन प्रदेशोंमें एक भी चिकित्सक नहीं है और वहाँ बहुतसे लोग सौ वर्षकी आयुतक पहुँच जाते हैं।" वैज्ञानिकने उत्तर दिया—"यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इन देशोंमें इतने चिकि-त्सकोंके रहते हुए भी कुछ लोग ही सौ वर्षकी आयुतक पहुँच पाते हैं।"

विद्यार्थियोंकी बुद्धि नष्ट कर दी जाती है और उन्हें प्राकृतिक प्रणालियोंका अध्ययन करनेके लिए इतना अयोग्य बना दिया जाता है कि उन्हें फिरसे उसके योग्य बननेमें कठिन परिश्रमपूर्वक अपना आधा जीवन बिता देना पड़ता है । सर कूपरका मत है कि ओषधि विज्ञानकी उत्पत्ति मिथ्या कल्पना और दिन पर दिन बढ़ती हुई हत्यासे हुई है । प्रो० माह्का मत है कि समस्त विज्ञानोंमें ओषधि-विज्ञान सबसे अधिक अनिश्चित है । एडिन्बराके मेडिकल कालेजके प्रो० ग्रेगराने कहा है कि चिकित्साशास्त्रमें जिन बातोंको सत्य माना जाता है उनमेंसे ९९ प्रति सैकडे मिथ्या हैं और उसके सिद्धान्त बिलकुल ही भोंडे और भद्दे हैं । प्रो० कार्सन कहते हैं-हम यह नहीं जानते कि रोगी हमारी ओषधियोंसे अच्छे होते हैं या प्रकृतिसे । सम्भवत उन्हें रोटीरूपी गोलियाँ ही अच्छा करती हैं । सर रिचर्डसनने कहा है कि ओषधियोंके व्यवहारसे सभ्यलोगोंकी आयु बहुत ही कम हो गई है । डा० टाइट्सका मत है कि ससारमें तीन चौथाई आदमी दवाओंके नुसखोंसे मरते हैं । फ्रान्सके प्रसिद्ध शरीर शास्त्रवेत्ता मैगेंडिक कहते हैं कि-ओषधियोंके विषयमें ससारमे किसी को कुछ भी ज्ञान नहीं है। रोगको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता प्रकृतिसे ही मिलती है, डाक्टरोंसे बहुत ही थोडी सहायता मिलती है और वह भी उस दशामें जब वे किसी प्रकारकी हानि न पहुँचावें । डाक्टर ओसलर जो कई विश्वविद्यालयोंमें चिकित्सा शास्त्रके अध्यापक रह चुके हैं और जो ओषधि-शास्त्रके सबसे बडे ज्ञाता माने जाते हैं, बिना ओषधिकी चिकित्साकी प्रशसा या निन्दा करते हुए एनसाइक्लोपीडिया एमरिकनामे लिखते हैं कि ओषधियोंकी निरर्थकताका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि उन्नीसवीं शताब्दीके आरभमे टायफाइड ज्वरकी चिकित्सामें बडी बडी भयकर और उग्र ओषधियोंका प्रयोग होता था । रोगीकी फसद खोली जाती थी, उसके शरीर पर छाले डाले जाते थे और तरह तरहके भीषण उपाय किए जाते थे ? पर आजकल रोगियोंको विशेष प्रकारसे स्नान कराया जाता है और उन्हें कदाचित् ही कोई ओषधि दी जाती है ! इससे यही सिद्धान्त निकाला जा सकता है कि ओषधियोका उन, रोगोपर कोई प्रभाव नहीं पडता, जिनके लिए उनका व्यवहार किया जाता है । अतमें आपने कहा है कि वही सबसे अच्छा चिकित्सक है, जो ओषधियोंको निरर्थक समझता है।

प्राकृतिक चिकित्सा ।

इन पृष्ठोंके पढनेके उपरान्त पाठकोंके मनमें स्वभावत यह प्रश्न उठ सकता है कि तब फिर रोगोंके शमनका सर्वोत्तम और निर्दोष उपाय कौनसा है ? आजकल अनेक प्रकारकी चिकित्सा प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिनमें ओषधियोंका प्रयोग बिल्कुल नहीं होता, केवल ऊपरी उपचारोंसे रोगोको शान्त किया जाता है । ये सभी प्रणालियाँ प्राकृतिक चिकित्साके नामसे अभिहित हैं । और जल-चिकित्सा, उपवास चिकित्सा, विद्युत् चिकित्सा आदि अनेक प्रकारकी चिकित्साएँ हैं । इनके अतिरिक्त मेस्मरिज्मके अनेक अंगों और प्रकारोंसे भी रोगियोंकी चिकित्सा की जाती है । यद्यपि ये सभी चिकित्साएँ प्राकृतिक कहलाती हैं, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर यह पता लग जाता है कि उनमेसे अधिकांशमें अनेक प्रकारकी ऐसी क्रियाओंकी आवश्यकता होती है जिन्हें कोई समझदार प्राकृतिक नहीं कह सकता । कुछ प्रणालियाँ अवश्य ऐसी हैं जो ठीक ठीक अर्थमें प्राकृतिक कही जा सकती हैं और उपवास चिकित्सा उनमेसे सर्व श्रेष्ठ है। उपवास चिकित्सामे न तो किसी प्रकारके ऊपरी उपचारकी आवश्यकता होती है और न किसी प्रकारके यन्त्र प्रयोगकी । इसमे आवश्यकता केवल इस बातकी होती है कि मनुष्य उस समय तकके लिए अपना भोजन छोड दे, जब तक कि उसे वास्तविक और स्वाभाविक भूख न लग । इसके अतिरिक्त उपवास-कालमे मनुष्यकी शक्ति बनाए रखनेके लिए उसमे कुछ व्यायामका भी विधान है ।

अब इस प्रणालीसे औषधि चिकित्साका मुकाबला कीजिए । दो ऐसे मनुष्योंको लीजिये जिनकी पाचन शक्ति नष्ट हो गई हो । उनमेसे एक मनुष्य तरह तरहकी गोलियाँ खाकर, अवलेह चाटकर और दवाओंकी बडी बडी बोतलें खाली करके अपनी भूख बढाता है, और दूसरा मनुष्य केवल दोचार दिनोंतक उपवास करके और सवेरे सन्ध्या दोचार मीलका चक्कर लगाके अपना भूख ठीक कर लेता है । अब आप ही सोचिए कि दोनोंमेसे फायदेमें कौन रहा ? दवाऐ खाकर, अपने शरीरको भाडेका टट्टू बना लेनेवाला अथवा उपवास और व्यायाम करनेवाला ? बडे बडे डाक्टरोंने परीक्षा और अनुभव करके यह सिद्धान्त निकाला है कि किसी रोगकी औषधद्वारा चिकित्सा आरभ करते ही रोगीको कई तरहकी

छोटी मोटी शिकायतें पैदा हो जाती हैं। किसीको कब्जियत आ घेरती है तो किसीके सिरमें दर्द होने लगता है। किसीकी नींद कम हो जाती है तो कोई दुर्बल और अशक्त हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति तो हमें सूचना देती है कि हम उसके स्वभावके विरुद्ध काम करते हैं–उसके साथ निष्ठुरताका व्यवहार करते हैं, पर हम उसकी सूचनाओं पर ध्यान ही नहीं देते, जबरदस्ती उसका गला घोंटते चलते हैं, अन्तमें प्रकृति भी लाचार होकर अस्वाभाविक स्थितिमें पहुँच जाती है; और उस दशामें शरीर ऐसा निकम्मा हो जाता है कि बिना औषधिकी सहायताके चल ही नहीं सकता। जब कुछ समयमें शरीर साधारण औषधियोंका अभ्यस्त हो जाता है तब उसे अधिक तीव्र औषधियोंकी आवश्यकता होती है। यह क्रम बराबर बढ़ता चला चलता है और अन्तमे मनुष्यके प्राण लेकर ही छोड़ता है। पर जो मनुष्य उपवास करता, अथवा हल्की और जल्दी पचनेवाली चीजें खाता, स्वच्छ वायुमें रहता और खूब कसरत करता है, वह स्वयं आरोग्यताकी किस स्थिति तक पहुँच सकता है इसका अनुभव प्रत्येक विचारवान् मनुष्यको स्वयं करना चाहिए। व्यायामसे शरीरमें नए बलकी उत्पत्ति होती है, रग-पट्ठे मजबूत होते हैं, फेफड़े, जिगर, गुरदे आदिके काम अधिक उत्तमतापूर्वक होने लगते हैं और सारे शरीरमे एक नई सजीवनी शक्ति आ जाती है। रोगीकी पाचन-शक्ति ठीक हो जाती है और उसे खूब खुलकर भूख लगती है। औषधियाँ किसी एक रोगको दूर करके भी अपने बहुतसे बुरे प्रभाव और अंश छोड़ जाती हैं; पर प्राकृतिक-चिकित्साकी ओषधियाँ-व्यायाम, शुद्ध-वायु, हलका और सुपाच्य भोजन आदि-रोगको अच्छा करनेके अतिरिक्त शरीरके और दूसरे बहुतसे विकारोंको भी नष्ट कर देती हैं। इस प्रणालीमें रोगको बल-पूर्वक जहाँका तहाँ दबाया नहीं जाता बल्कि उसका कारण दूर किया जाता है।

सुप्रसिद्ध डाक्टर ई. एच. डेवीने एक बार कहा था-" किसी रोगी मनुष्यके पेटमें भोजन न रहने दो; इससे वह रोगी नहीं बल्कि रोग भूखों मर जायगा। " और यह बात वास्तवमें है भी बहुत ठीक । उपवास-चिकित्साके सिद्धान्त इतने सरल, उपयोगी और लाभदायक हैं कि शरीर-शास्त्र-वेत्ता मात्र उससे सहमत हैं, सभी देशों और प्रकारोंके चिकित्सक किसी न किसी अवसर पर और किसी न किसी रूपमें उनके अनुसार काम करते हैं। संसारके सभी

चिकित्सा ग्रन्थोंसे उनका समर्थन होता है और यहाँ तक कि पशु पक्षी आदि भी अपने आचरणोंसे उन सिद्धान्तोंकी पुष्टि करते हुए देखे जाते हैं। उपवासके सिद्धान्तोंकी उपयोगिता समझानेके लिए इससे बढ़ कर और क्या चाहिए?

शरीरकी किया पर उपवासका जो परिणाम होता है उसके सम्बन्धमें बहुत कुछ इस पुस्तकके आरम्भमे ही कहा जा चुका है। कैसे आश्चर्यकी बात है कि लोग बीच बीचमें अपने कामसे स्वय तो अवश्य छुट्टी ले लेते हैं, पर अपने शरीरको कभी छुट्टी नहीं देते। हाथ पैर या मस्तिष्कमे होनेवाले कामोंको छोड़ देना ही वास्तवमें शरीरको छुट्टी देना नहीं है, क्योंकि उस समय शरीरकी भीतरी मशीनको आराम करनेका अवसर नहीं मिलता। हम अपने दिमागके साथ भले ही कभी कभी थोड़ी बहुत रिआयत कर दिया करते हों पर अपने पेटके साथ हम कभी रिआयत नहीं करते और पेटसे सदा काम लेते रहना ही सब प्रकारके रोगोंकी जड़ है।

धर्म्मग्रन्थ और उपवास।

संसारमें प्राय जितने मुख्य मत, धर्म्म या सम्प्रदाय हैं उन सबमे किसी न किसी प्रकारके उपवास या व्रतकी आज्ञा दी गई है। पहले भारतीय धर्म्मोको ही लीजिए। हिन्दुओंके धर्म्म शास्त्रोंमें भिन्न भिन्न पुण्य तिथियो और पर्व्वोंको छोड़ कर प्रत्येक एकादशी, प्रदोष और रविवार आदिके लिए व्रतका विधान है। हिन्दुओंके समस्त व्रतोंकी सख्या ५५० से ऊपर है। अधिकांश व्रतोंमें अन्न मात्रका स्पर्श न करने और बहुधा एक बार थोड़ासा फलाहार करनेकी आज्ञा है। इन सब व्रतोंके मूलमें केवल एक ही सिद्धान्त है और वह सिद्धान्त पाचन क्रियाको ठीक अवस्थामें रखना अथवा लाना है। आजकल लोग व्रत तो करते हैं पर इस सिद्धान्तका गला इतनी बुरी तरहसे घोंटते हैं कि उनके व्रतका फल व्रत न रखनेसे भी अधिक हानिकारक होता है। फिर व्रतमे केवल एक बार और वह भी बहुत थोड़े मानमें फल आदि ही खानेका विधान है, उस व्रतमें लोग सिंघाड़े और कूटूके आटेकी पूरियाँ, तरह तरहकी पकौड़ियाँ, दस पाँच तरहकी तरकारियाँ, दो तीन तरहके हलुए और कई तरहकी मिठाइयाँ

खा जाते हैं और ऊपरसे जहाँतक अधिक हो सकता है, दूध रबड़ी और मलाईका भी सत्यानाश करते हैं। रोजके भोजनसे दुगुना और तिगुना भोजन केवल इसी लिए होता है कि उस दिन वे लोग व्रत रहते हैं—उपवास करते हैं। इसमें दोष लोगोंका ही है, धर्म्मग्रन्थोंमें इनकी आज्ञा केवल हित और कल्याणकी दृष्टिसे दी गई है। इसके अतिरिक्त हमारे धर्म्मग्रन्थोंमे निर्जल और चान्द्रायण आदि अनेक प्रकारके दूसरे व्रत भी हैं जिनमें किसी प्रकारके नियमोल्लंघनकी भी सम्भावना नहीं होती। भारतमे पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक व्रत करती हैं और यही कारण है कि यहाँकी स्त्रियाँ साधारणतः उन रोगोंसे मुक्त रहती हैं जिनके कारण मर्द परेशान रहते हैं। कब्जियत और अनपच आदि रोग स्त्रियोंको बहुत कम होते हैं। जैनियोंके धर्म्मग्रन्थोंमे केवल अनेक प्रकारके उपवासोंका ही विधान नहीं है बल्कि बहुकाल-व्यापी उपवासोंका भी विधान है। उनके उपवास सप्ताहों बल्कि महीनों तक चलते हैं और बहुतसे अंशोंमें उन उपवासोंसे मिलते जुलते होते हैं जो आजकलके पाश्चिमात्य उपवास चिकित्सक अपने रोगियोंसे कराते हैं। मुसलमानोंको रमजानके महीनेमें तीस दिनों तक अपने धर्म्मग्रन्थके आज्ञानुसार बराबर रोजे रखने पड़ते हैं। रोजेके दिन वे बहुत सवेरे ब्राह्म-मुहूर्त्तमें भोजन कर लेते हैं और तब दिन भर कुछ नहीं खाते, रोजा सूर्य्यास्तके बाद ही खुलता है। ईसाइयोंके धर्म्मग्रन्थोंमे भी उपवासकी स्पष्ट आज्ञा है। वे उपवासके दिन कुछ विशिष्ट पदार्थ ही खाते हैं और बहुधा कई कई दिनों तक उपवास रखते हैं। तात्पर्य यह कि सभी प्रधान और प्राचीन धर्मोंमें उपवासका विधान है और उनके ग्रन्थोंके अनुसार शरीर, मन और आत्मा तीनोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक है।

जो धर्म्म बहुत हालके चले हुए हैं, उनमें अवश्य ही उपवासकी आज्ञा नहीं है और इसका कारण भी बहुत स्पष्ट है। बहुत प्राचीन कालमे, जब कि मनुष्य पर सभ्यताका रंग नहीं चढ़ा था, वह केवल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसे प्रकृतिके नियमोंका बहुत कुछ सहज और स्वाभाविक ज्ञान रहता था और वह कभी यथासाध्य प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन न करता था। अनेक प्राचीन जातियोंके विषयमें अनुसन्धान करने पर पता चला है कि वे आठ पहरमें केवल एक बार और वह भी बहुत अल्प भोजन करती थीं। मनुष्य जातिमें

उसने उचित न समझा; पर वह एक पहाड़की चोटीपर चला गया और वहाँ पहुँचकर उसने अन्न जल छोड़ दिया। उसे आशा थी कि इस प्रकार बिना अन्न-जलके रहनेसे उसके प्राण अवश्य निकल जायँगे। पर उसकी वह आशा पूरी नहीं हुई और वह बिना अन्न जलके सत्तर दिनों तक जीता रहा। इतने दिनोंमें उसका दुःख भी कम हो गया और उसके मनमें ज्ञान भी उपजा। इकहत्तरवें दिनसे उसने एक एक तोला भोजन करना आरम्भ किया। इसके बाद उसका स्वास्थ्य पहलेकी अपेक्षा बहुत सुधर गया। वह चौदह वर्षोंतक जीवित रहा और उसने अनेक मठ आदि स्थापित किए। आजकल भी यह देखा गया है कि खानोंमें काम करनेवाले कुली केवल पानी पीकर ही आठ दस दिनों तक रहते हैं और बिना अन्नके बराबर काम करते रहते हैं। बहुतसे मल्लाहोंने बिना भोजनके गरमसे गरम देशोंमें आठ आठ और दस दस दिन बिता दिए हैं।

पशु और उपवास।

उपवासकी उपयोगिता सिद्ध करनेके लिए हमें सबसे अच्छे और निर्विवाद प्रमाण तरह तरहके पशुओं और पक्षियों और दूसरे जीवोंसे मिल सकते हैं। मनुष्यकी तरह इन जीवोंको सभ्यताने अपने पाशमें नहीं फँसाया है और ये बहुधा प्राकृतिक अवस्थामें ही रहते हैं। उन पशुओं और पक्षियों आदिकी बातें जाने दीजिए जिनके मालिक उन्हें जरासा बीमार समझकर ही किसी पशु-चिकित्सालयमें भेज देते हैं और उनको भी जबरदस्ती दवा पिलाकर अपनी तरह जन्म-रोगी बना लेते हैं। सभ्य मनुष्योंको छोड़कर बाकी प्रायः सभी जीव किसी भारी रोगसे पीड़ित होने पर सबसे पहले भोजनका ही परित्याग करते हैं। यदि किसी तरहसे कोई घाव लग जाता है तो वह किसी एकान्त स्थानमें जाकर बिना जल और भोजनके कई कई सप्ताहों तक पड़ा रहता है। केचुली बदलनेके समय साँप कई सप्ताहों तक बिना आहारके ही पड़ा रहता है। इसका कारण यही है कि आहार न करनेके कारण उसकी वह क्रिया थोड़े कालमें और जल्दी हो जाती है बहुतसे पशु ऐसे होते हैं जिनका खून गरम होता है। ऐसे पशु

अपने साथ लेकर फिर उसी स्थान पर गए, जहाँ वह मकानकी छत परसे गिरा था और उन्होंन वहाँके पशु-चिकित्सकको उसे दिखलाया तब चिकित्सकको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। सबसे पहले तो उसकी समझमें यही बात नहीं आती थी, कि वह बिना किसी प्रकारके भोजन या औषधिके जीता ही कैसे बचा। उसके सिद्धान्तके अनुसार तो उसे जीवित रखने और नीरोग करनेके लिए इस बातकी आवश्यकता थी कि बहुतसा भोजन शराब और बीसियों तरहकी औषधियाँ जबरदस्ती नलीकी सहायतासे उसके पेटमें उतारी जाय, तब फिर भला उसका जीवित रहना और चंगा हो जाना उसकी समझमें कैसे आ सकता था! इसी लिए वह उस बातको अनहोनी समझता था। अन्तमें उसे यही कहना पड़ा कि इस कुत्तेकी जीवन शक्ति ही कुछ अद्भुत है।

प्रत्येक मनुष्य थोडा अनुभव करके यह बात अच्छी तरह समझ सकता है कि जंगली और पालतू सभी जानवर रोगी होनेपर दाना पानी छोड देते हैं और बहुधा अपेक्षाकृत शीघ्र ही नीरोग हो जाते हैं। अन्न जल छोड़नेकी शिक्षा उन्हें स्वयं प्रकृतिसे ही मिलती है, और प्रकृति वही शिक्षा पशुओंके द्वारा हम समझदारोंको भी देती है पर हम अपनी समझदारीके आगे उसकी कोई कदर लगने ही नहीं देते। हम लोग भोजनकी सहायतासे रोगका पालन करते हैं और औषधियोंकी सहायतासे उसकी वृद्धि करते हैं, और तिसपर समझते यह हैं कि हम अपनी चिकित्सा कर रहे हैं! पर चिकित्साके मूल सिद्धान्तोंसे हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। हम लोगोंका मार्ग ही उससे बिल्कुल भिन्न और विपरीत है। या तो प्रकृति स्वयं वैद्या बनकर हमें नीरोग कर दे या हम तरह तरहके उपायोंसे रोग उत्पन्न करनेवाले विषको एकत्र करके शरीरके किसी अंगमें दबा दें और उसे समय पाकर फिरसे बढ़ने और फैलनेका मौका दें। इसके सिवा हमारे चंगे होनेका और कोई उपाय ही नहीं है। न जाने मनुष्योंकी समझमें यह छोटीसी बात कब आवेगी कि रोगी जब आहार छोड देता है तब आहारको पचानेवाली शक्ति उसके रोगका शमन करनेमें लग जाती है और उस दशामें वह शीघ्र ही नीरोग हो जाता है।

चिकित्सा और उपवास।

आजकल जितनी चिकित्साएँ प्रचलित हैं और जिनमेंसे अधिकांशको हम अप्राकृतिक बतला आए हैं, उन सब चिकित्साओंमें भी किसी न किसी अवस्था और किसी न किसी रूपमें उपवास अवश्य कराया जाता है। रोगीका भोजन परिमित कर देना तो चिकित्सक मात्रका मूल मंत्र है पर बहुतसी अवस्थाओंमें वे उपवासकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता समझते हैं। ज्वर आदि बहुतसे रोगोंके आरम्भमें तो रोगीको सबसे पहले अवश्यमेव उपवास ही कराया जाता है और उठते हुए ज्वरको छेड़ना किसी प्रकार ठीक नहीं समझा जाता। यद्यपि बहुतसे ऐसे शौकीन रोगी भी निकलेंगे जो रातको थोड़ी हरारत होते ही सवेरे दोचार खुराक दवाकी पी डालेंगे तथापि कोई बुद्धिमान् उनके इस कृत्यकी प्रशंसा न करेगा। अनेक रोगोंके आरंभमें तो हम अवश्य ही पर-विवश होकर प्रकृतिके कुछ नियमोंका पालन करते हैं; क्योंकि यदि हम उनका पालन न करें तो प्रकृति हमें कठोर दंड देती है। पर आगे चलकर जब हम उन नियमोंके पालनसे कुछ लाभ उठा चुकते हैं तब उन्हींका अतिक्रमण करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि उस समय हम उस स्थितिमें पहुँच जाते हैं जिसमें प्रकृतिद्वारा हमें तुरन्त ही नहीं बल्कि कुछ कालके उपरान्त दण्ड मिलता है। अनेक रोगोंके आरम्भमें जब डाक्टर, वैद्य या हकीम अपने रोगीको उपवास कराता है तो उससे रोगका जोर बहुत कुछ घट जाता है। यदि रोगीको उसी स्थितिमें कुछ और समयतक रहने दिया जाय—उसे न तो किसी प्रकारकी दवा दी जाय और न किसी प्रकारका भोजन—तो अवश्य ही वह बहुत शीघ्र नीरोग हो सकता है। पर यहाँ आरम्भ तो होता है प्राकृतिक नियमोंसे और बीचमें ही अप्राकृतिक नियमोंका व्यवहार आरम्भ हो जाता है।

जो हो, पर इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं कि सभी चिकित्सक [illegible] किसी अवसरपर अपने रोगीका भोजन बन्द कर देते हैं। इससे यह नि[illegible] है कि वे उपवासका महत्त्व जानते और मानते तो अवश्य हैं और [illegible] समयपर लाभ भी उठाते हैं, पर उनका उपवाससम्बन्धी ज्ञान [illegible] ही कम है। हकीमों और वैद्योंकी अपेक्षा डाक्टरोंका [illegible]

अल्प है। कोई हकीम या वैद्य तो अपने रोगीको दस बीस दिनोंतक बिना भोजनके रख सकता है, पर किसी डाक्टरके लिए ऐसा करना असम्भव है। प्राय हकीमों और वैद्योंके ऐसे कृत्योंपर डाक्टर लोग हँसते हुए देखे गए हैं। वे लोग समझते हैं कि यदि रोगीको किसी प्रकारका आहार न दिया जायगा, तो उसकी शक्ति नष्ट हो जायगी और वह नीरोग होनेके बदले मर जायगा। पर उनका यह मत सर्वांशमे सत्य नहीं उतरता। आगे चलकर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि उपवास और बल-क्षयका परस्पर कितना सम्बन्ध है। पर इस अवसरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास करनेवाले वैद्यों और हकीमोंकी निंदा करने और हँसी उडानेवाले डाक्टर भी कुछ विशेष अवस्थाओं और रोगोंमें अपने रोगियोंको आठ आठ और दस दस दिनतक बिना भोजनके ही रखते हुए देखे गए हैं।

आयुर्वेद और उपवास।

इस अवसर पर थोडे शब्दोंमें यह बतला देना भी अनुचित न होगा कि हमारे प्राचीन भारतीय चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेदमें उपवासको कितना महत्त्व दिया गया है और उसके क्या क्या लाभ बतलाए गए हैं। हमारे यहाँके आयुर्वेदज्ञोंका मत है, कि शरीरमे कफ, पित्त और वात ये तीन पदार्थ है। जब तक ये तीनों पदार्थ समान स्थितिमें रहते हैं तब तक मनुष्य नीरोग रहता हैं, पर जब इनमेसे कोई पदार्थ घट या बढ़ जाता है, तब उसकी गिन्ती दोषोंमें होती है, अर्थात् उसके कारण मनुष्यके शरीरमे कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। यह रोग बहुत ही क्षुद्र भी हो सकता है और महाभयकर भी। यही कारण है कि यदि आप किसी रोगके सम्बन्धम आयुर्वेदका कोई ग्रन्थ उठा कर देखे तो उसमें आपको उस रोगकी उत्पत्ति कफ, पित्त अथवा वातसे ही मिलेगी। बढे या घटे हुए पदार्थको समान स्थितिमे लाना और दोषका नाश करना ही वैद्य मात्रका कर्त्तव्य होता है। उपवास या लघनके विषयमे हमारे चिकित्सा शास्त्रका मत है कि उसे सहन करनेकी शक्ति केवल दोषोंमे ही होती है। जब तक मनुष्यके शरीरमें दोष रहता है तभी तक वह निराहार रह सकता है, दोषोंके शमन हो

जाने पर वह बिना भोजनके नहीं रह सकता। यह बात वैद्यकके कई ग्रन्थोंमें लिखी हुई है। भावप्रकाशमें लिखा है कि लघन करनेसे दोष नष्ट होते हैं, जठराग्नि दीप्त होती है, शरीर हलका हो जाता है और भूख बढती है। जब कि दोषोंहीसे रोगोकी सृष्टि होती है और लघनसे दोषोंका नाश होता है तब इस सिद्धान्तके माननेमें कोई सकोच नहीं हो सकता कि लघनसे रोगोंका नाश होता है। सुश्रुतमें यह बात स्पष्ट रूपसे लिखी हुई है कि जिस मनुष्यकी अग्नि और दोष ठीक दशामें न हो, लघनसे उसकी अग्नि ठीक दशामें आ जाती है और उसके दोषोंका परिपार हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंकी सम्मतिके अनुसार पहले एक स्थान पर यह कहा जा चुका है कि रोगी जब आहार छोड देता है तब उसकी आहार पचानेवाली शक्ति उसके रोगका शमन करनेमें लग जाता है और उस दशामें वह शीघ्र नीरोग हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंके इस सिद्धान्तका पुष्टि हमारे यहाँके प्राचीन शास्त्रोंके इस वचनसे भलाभाँति हो जाता है–" आहार पचति शिखी दोषानाहारवर्जित।" अर्थात् आहारको अग्नि पचाता है और जब पेटमें आहार नहीं रहता तब वह दोषोंको पचाती या नष्ट करता है। इससे यह बात प्रमाणित होता है कि खाली पेट रहनेसे दोषों या रोगोका नाश ही होता है; निराहार रहनेसे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। भावप्रकाशमें लिखा है कि यदि दोष साधारण या मध्यम अवस्थामें हो तो लघन करना ही श्रेष्ठ है। उसके मतसे लघनके द्वारा वायुका दोष सात दिनमें, पित्तका दोष दस दिनमें और कफका दोष बारह दिनमें पच जाता है। यद्यपि दोषकी भयकर अवस्थामें उक्त ग्रन्थके कर्त्ताने लघनकी आज्ञा नहा दी है, तथापि इससे हमारे सिद्धान्त पर किसी प्रकारका दोष नहा आ सकता। कोई दोष आरम्भ होते ही महाभयकर या उग्र रूप नहीं धारण कर लेता। पहले वह साधारण या मध्यम अवस्थामें ही रहता है, उग्र अवस्था तक पहुँचनेमे उसे कुछ समय लगता है। यदि दोषके आरम्भ होते ही उपवासका भी आरम्भ हो जाय तो निश्चय है कि उस दोषका नाश ही होगा। सुश्रुतके अनुसार तो शरीरको हलका करनेवाली सभी क्रियाएँ लघनके अन्तर्गत आ जाती हैं और चरकने वायुसेवन और व्यायाम आदिको भी लघनके अन्तर्गत ही माना है। यदि किसी रोगीके पेटमें बहुतसा अन्न हो और वैद्य उस अन्नको वमन या विरेचनकी सहायतासे बाहर निकाल दे तो उसकी यह क्रिया

लंघनसे भी कहीं बढ़कर होगी, क्योंकि लंघनकी सहायतासे उतना अन्न पचानेमें उससे कहीं अधिक समय लगता, जितना वमन या विरेचनमें लगता है। वायुसेवन और व्यायाम आदिसे भी दोषोंका नाश ही होता है। इन चिकित्साओंको लंघनके अंतर्गत माननेसे लंघनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है और उससे सिद्ध होता है कि यह बहुत ही उपकारक क्रिया है। सुश्रुतके अनुसार लंघनसे ज्वरका नाश होता है, अग्निका दीपन होता है और शरीर हल्का हो जाता है। उसके अनुसार यदि लंघनके उपरान्त मल-मूत्रका त्याग उचित रीतिसे हो, भूख प्यास न सही जाय, शरीर हल्का जान पड़े, आत्मा और मन शुद्ध हो और इन्द्रियाँ निर्विकार और सुखी हों तो समझना चाहिए कि लंघन ठीक और उचित रीतिसे हुआ है। यही बात दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कही जा सकती है कि अच्छी तरह और नियमपूर्वक लंघन करनेके परिणामस्वरूप ऊपर लिखी बातें होती हैं।

ज्वरकी दशामें तो लंघनको सभीने उपयुक्त ही नहीं, बल्कि बहुत आवश्यक भी माना है। चक्रदत्तने कहा है कि नवीन ज्वरका क्षय लंघनकी सहायतासे करे और आत्रेय ऋषिकी आज्ञा है कि ज्वरके आरम्भमें लंघन करावे। वैद्यकमें वमन, विरेचन, निरूहवस्ति (इन्द्रियजुलाब) और शिरोविरेचन ये चार प्रकारकी संशुद्धियाँ मानी गई हैं। ये संशुद्धियाँ ज्वरमें कराई जाती हैं; पर उपवासको शास्त्रमें इन संशुद्धियोंसे कहीं अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ माना है। चरक और वाग्भट्टने कहा है कि दूषित वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर जठराग्निको मन्द कर देते हैं और आमके साथ मिलकर शरीरके छिद्रों या रोमकूपोंको आच्छादित करके ज्वर उत्पन्न करते हैं। आम दोषादिको पचाने, जठराग्निको दीप्त करने और शरीरके छिद्रोंको शुद्ध करनेके लिए लंघनकी आवश्यकता होती है। इस अवसर पर कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि जो दोष अग्निको मन्द करते हैं उनके शमनके लिए लंघनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ उपाय नहीं है।

जिन पाश्चात्य डाक्टरोंने उपवास-चिकित्साका आविष्कार किया है वे उपवास-कालमें रोगीको केवल शुद्ध जल देते हैं। वैद्यकके ग्रन्थोंमें भी उपवास-कालमें केवल जल ही देनेका विधान है। जल हमारे यहाँ अमृत माना गया है और यह कहा गया है कि उससे सभी दशाओंमें उपकार होता है। इसके अतिरिक्त वैद्यकके ग्रन्थोंमें यह भी लिखा है कि वैद्यको चाहिए कि लंघन इस प्रकार करावे कि

भूख मारी जाती है। उस समय शरीरकी शक्ति बनाये रखनेके उद्देश्यसे जो कुछ जबरदस्ती खाया जाता है वह शक्ति बनाये रखनेकी अपेक्षा उसे बिगाड़ना प्रारंभ कर देता है। उस अवस्थामें मनुष्यको इस बातके मिथ्या भ्रममें न फँस जाना चाहिए कि दो चार रोज भोजन न मिलनेके कारण ही हमारे प्राण निकल जायँगे। हमारे लिए भय या चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। प्रकृति हमारी सबसे बड़ी रक्षक है। वह बहुत अच्छी तरह जानता है कि किस अवसर पर क्या होना चाहिए। प्रकृति देवीकी गोदमें पड़कर सुखी और स्वस्थ बननेका अभ्यास करो, रोगोंके विकार दूर करनेका हेतु या कारण समझो, विषके समान कड़ुई दवाओं और पैने नश्तरोंके कारण होनेवाले भीषण कष्टोंसे बचने और एक दो दिनके थोड़ेसे शारीरिक कष्ट सहनेका अभ्यास करो और तब देखो कि तरह तरहकी दुर्बलताओं और रोगोंसे मुक्त होकर तुम कितनी जल्दी प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जाते हो। याद रक्खो, हमें जितनी शारीरिक वेदनायें होती हैं वे सब किसी न किसी रूपमें प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करनेके कारण ही होती हैं। जो मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करता है, प्रकृतिका मनन करके अपने आपको उस पर छोड़ देता है और कष्टके समय उसे छोड़कर किसीकी सहायता नहीं लेता, वही सबसे बड़ा भाग्यवान्, सबसे अधिक बुद्धिमान् और सबसे ज्यादह सुखी है। साथ ही यह भी याद रक्खो कि तरह तरहकी दवाइयोंकी पुड़ियाँ खाना, शीशियाँ पीना, गोलियाँ निगलना, नश्तर लगवाना आदि बातें मनुष्यके लिए कभी स्वाभाविक नहीं हो सकतीं। शरीरकी सृष्टि प्रकृतिसे होती है और उसका पालन-पोषण तथा रक्षण आदि भी प्रकृतिके नियमानुसार ही हो सकता है, अन्य उपायों या नियमोंसे नहीं। प्राकृतिक-चिकित्साके विरोधी यह बात कह सकते हैं कि बड़े बड़े रोग ओषधियों और चीर फाड़से अच्छे हो जाते हैं परउन्हें यह बात भूल न जानी चाहिए कि उन भयंकर रोगोंका बीजारोपण भी स्वयं उन्हीं ओषधियों और चीर फाड़से ही होता है। अथवा किसी दशामें यदि उन ओषधियों और चीर फाड़से न हो तो कमसे कम प्राकृतिक नियमोंके उल्लंघनसे अवश्य होता है। यदि आरम्भसे ही मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करे और अप्राकृतिक उपचारोंसे बचता रहे तो उसे कोई रोग उत्पन्न भी हो तो प्रकृतिकी शरणमें जाते ही वह अवश्य दूर हो जाता है।

शरीर और उपवास।

शारीर शास्त्र वेत्ताओंका मत है कि भोजन पचानेके लिए अपने शरीरकी जीवन शक्ति पर हमें उतना ही बोझ डालना चाहिए जितनेसे हमारे शरीरका काम भलीभाँति चलता रहे। उस पर व्यर्थ और आवश्यकतासे अधिक बोझ डालकर उसका अपव्यय और ह्रास करना एक प्रकारकी आत्म-हत्या है। यह तो हुई साधारण और नित्यप्रतिके कामकी बात। अब विशेष अवसरों और अवस्थाओंको लीजिए। अपने शरीरको थोड़ी देरके लिए रसोई घर समझ लीजिए और पक्वाशयको रसोइया मानिए। यदि आँधी चलनेके कारण रसोईघरमें बहुतसी धूल और गर्द भर जाय, उसकी दीवारकी दोचार ईंटें निकल जायँ, छप्परका कुछ अश टूटकर गिर पड़े अथवा इसी प्रकारका और कोई व्यत्यय उपस्थित हो तो विचारिए कि उस समय आपका क्या कर्तव्य होगा? आप पहले रसोई-घरको झाड़ बुहारकर गर्द और धूलसे साफ करेंगे और उसके टूटे हुए अशोंकी मरम्मत करके उसे काम चलाने योग्य बना देंगे अथवा तुरन्त रसोइयेको आज्ञा देंगे कि वह उस टूटे फूटे और गन्दे स्थानमें ही तुरन्त आपके लिए रसोई बनावे? उस समय आप भडारमें रक्खे हुए सत्तू, चने, गुड़ या मिठाई आदिसे अपना काम चला लेंगे या रोजकी तरह बढ़िया दाल, भात, कढ़ी, तरकारी, चटनी और रोटी आदिकी आशा रखेंगे? हम पहले ही कह आये हैं कि प्रकृति हमारी सब आवश्यकताओंको समझती है और उसकी पूर्तिके उपाय वह पहलेसे ही कर भी रखता है। हमारे शरीरके भीतर चरबी आदि अनेक ऐसे पदार्थ भरे पड़े हैं जो आवश्यकता और अड़चनके समय बड़ा सरलतासे हमारे पक्वाशयकी प्रधान आवश्यकताको पूरा कर सकते हैं। यह तो हुई उस समयकी बात जब कि हमारी अग्निको और कामोंसे छुट्टी मिल चुकी हो और वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमें पहुँच कर अपना नित्यकृत्य करनेके लिए तैयार बैठी हो। रोग और व्याधि आदिके समय तो उसे अपनी सारी शक्ति दोषोंको नष्ट करनेमें ही लगा देनी पड़ती है। उस दशामें यदि हम उससे कोई और काम लें, उसका बल किसी दूसरी तरफ लगादें तो यह कब सम्भव है कि वह हमारे शरीरके दोषोंको बाहर निकालने या नष्ट करनेमें समर्थ होगी। उस अवस्थामें हमें यही उचित है कि

जहाँतक हो सके हम उसे सब प्रकारके बोझोसे हलका कर दें, जिसमें वह अपनी सारी शक्ति हमें नीरोग बनानेमें लगा सके। रोग आदि होने पर हमारी अग्नि स्वयं कोई दूसरा काम नहीं करना चाहती और यही कारण है कि बहुधा रोगोंमें लोगोंकी भूख मारी जाती है। उस समय नित्यक्रिया समझकर यत्नपूर्वक पेटमें भोजन उतारा जाता है और रोगको मनमाना बढ़नेके लिए अवसर दिया जाता है। यहाँतक कि लोग भूख न लगनेको भी एक रोग ही समझ बैठते हैं। उनकी समझमें यह नहीं आता है कि जठराग्नि हमें सूचना दे रही है कि–'रसोईघरकी मरम्मतकी आवश्यकता है मैं अपना काम भंडारमें रक्खी हुई चीजोंसे चलाकर वह मरम्मत कर डालूँगी।' हमारे शरीरमें बहुतसे ऐसे फालतू पदार्थ हैं जो उपवास कालमें हमारे शरीरका काम चला देते हैं और फिरसे जिनकी भरती बादमें होती रहती है। हमारे शरीरमें बहुतसे ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो वृद्धावस्थाके लिए जमा होते हैं पर जब बीचमें शरीरकी मरम्मतकी आवश्यकता होती है तब उन्हींसे काम चल जाता है और मरम्मत हो चुकने पर धीरे धीरे उनकी पूर्ति होती रहती है। ये रक्षित पदार्थ आवश्यकता पड़ने पर तुरत ही काममें लाये जा सकते हैं और उनका व्यय हो जानेके कारण शरीरके नित्यके कामोंमें कोई बाधा नहीं पड़ती। यदि लोग यह समझते हों कि भूखे रहनेसे मनुष्योंके प्राणों पर आ बनती है अथवा वह असमर्थ और बेकाम हो जाता है तो यह उनकी भूल है। इस सम्बन्धमें कुछ विशेष अनुभव सिद्ध बातें आगे चलकर कही जायगी।

मन और उपवास।

उपवासका शरीरकी शुद्धि तो होती ही है, मनके साथ भी उसका प्रायः वैसा ही सम्बन्ध है। जिस समय किसी शारीरिक वेदना या रोगकी उत्पत्ति होती है उस समय उस वेदना या रोगको नष्ट करनेके लिए हमारी भूख बंद हो जाती है। असाधारण मानसिक चिन्ता, कुढ़न या क्रोध आदिका भी पाचन क्रियापर वैसा ही प्रभाव पड़ता है उससे हमारे शरीरका अनिष्ट सम्भावित होता है और उसी अनिष्टसे रक्षित रहनेके लिए प्रकृति हमारे मस्तिष्कको पोषणद्रव्य पहुँचाना बन्द कर देती है। तात्पर्य यह कि हमारी शारीरिक

क्रियामें जहां किसी प्रकारका व्यतिक्रम होता है वहीं हमारी भूख बन्द हो जाती है और इस प्रकार वह उपवासके महत्त्वकी घोषणा करती है। जिस प्रकार उपवास हमारे शारीरिक दोषोंको नष्ट करता है उसी प्रकार वह हमारे मानसिक विकारोंको भी दूर कर देता है। कई बड़े बड़े उपवास-चिकित्सकोंको अनेक रोगियोंके सम्बन्धमें यह अनुभव करके बहुत ही आश्चर्य हुआ कि उपवासका मनपर पड़नेवाला लाभदायक प्रभाव शरीरपर पड़नेवाले प्रभावकी अपेक्षा कहा अधिक था। इस देशके वैद्यकके ग्रन्थोंमें लिखा हुआ है, कि उपवाससे मन और आत्माकी भी शुद्धि होती है, और पाश्चात्य डाक्टरोंके अनुभव करने पर यह बात बहुत सत्य निकली है। जो रोगी किसी अच्छे चिकित्सककी देख-रेखमें दो एक लम्बे उपवास कर लेते हैं, कठिन विषयों और समस्याओं पर विचार करनेकी उनकी शक्ति पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ जाती है। इसका कारण यही है, कि हमारे शरीरमें अधिक भोजन आदिके कारण जो विकार एकत्र हो जाता है, हमारे शरीरकी शक्तियोंके लिए वह बहुत ही हानिकारक होता है। वह उनका बहुतसा अंश अपने साथ जूझनेके लिए खींच लेता है और इस प्रकार उनके ह्रासका कारण होता है। पर उपवासके कारण हमारे शरीरका सारा विकार नष्ट हो जाता है और तब हमारी शक्तियोंको किसी शत्रुका विरोध करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। उस दशामें हम उनसे पूरा पूरा काम लेनेमें समर्थ हो जाते हैं। हमारी सभी इन्द्रियोंमें बल आ जाता है और वे अपने अपने कार्य्य सुभीते और सरलतासे करने लगती हैं। जब उपवास हमारे शरीरको हर तरहसे लाभ पहुँचा सकता है, तब कोई कारण नहीं कि वह हमारे मन और आत्माको संस्कृत न कर सके और उनका बल बढ़ा न दे। मानसिक विकारों और दोषोंको दूर करनेमें भी उपवास उतना ही समर्थ है, जितना शारीरिक विकारों और दोषोंको नष्ट करनेमें है। आरोग्यताके इच्छुकोंके अतिरिक्त मानसिक संस्कृति चाहनेवालोंके लिए भी उपवास अत्यन्त लाभदायक है। इसके अतिरिक्त जिस मनुष्यके शरीरमें कोई विकार न रह जायगा और जिसकी सभी शारीरिक क्रियायें सरलतापूर्वक होती रहेंगी उसका मन भी अवश्य ही सदा प्रसन्न और सबल रहेगा।

शारीरिक बल और उपवास।

जो लोग सैकड़ो पीढ़ियोंसे दिनमें तीन तीन और चार चार बार भोजन करते आये हों और एकाध दिन भोजन न मिलनेके कारण जिनका शरीर एकदम शिथिल पड जाता हो, उनके मनमें उपवासके सम्बन्धमें तरह तरहकी शंकायें उत्पन्न होना बहुत ही स्वाभाविक है। जिस युगके लोग अन्नको ही प्राण मानते हों उस युगमें लेगोको पखवाड़ों बल्कि महीनोंतक निराहार रहनेके गुण सहाजमें नहीं समझाये जा सकते। केवल यह कह देना कि महीने पन्द्रह दिन तक निराहार रहनेसे मनुष्यका शरीर सब प्रकारसे नीरोग और बलिष्ठ हो जाता है, यथेष्ट नहीं है। इसपर लेगोको तरह तरहकी शंकायें हो सकती हैं और इस पुस्तकमें उन शंकाओंका समाधान होना बहुत आवश्यक है। इस स्थल पर उन्हीं शंकाओं पर विचार किया जायगा।

अकाल आदिके समय हम लोग हजारों आदिमियोंको बिना अन्नके भूखो मरते हुए देखते और सुनते हैं और इसी लिए उपवासके सम्बन्धमें सबसे पहले यही शंका हो सकती है कि बिना अन्नके मनुष्य अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। इसलिए उपवास और भूखों मरनेमें जो अन्तर है उसका यहाँ बतलाना उचित जान पडता है। पहले बतलाया जा चुका है, कि प्रकृतिने हमारे शरीरमें बहुतसा ऐसा सामान भर रक्खा है, जो विशेष आवश्यकताके समय हमारे काम आ सकता है। जब हमें अन्न नहीं मिलता तब हमारे शरीरके उसी फालतू सामानसे हमारा काम चलता है। इस देशमें नवरात्र आदिके समय बहुतसे लोग नौ नौ दिन तक बिना अन्न और जलके रह जाते हैं। बहुतसे लोग इससे भी अधिक दिनोंतक निराहार रहते हैं। उस कालमें उनका शरीर दुबला हो जाता है, चेहरा उतर जाता है और ठोकर बैठ जाती है। इस शारीरिक ह्रासका मुख्य कारण यही है कि उनके शरीरका फालतू सामान उनके पोषणमें लग जाता है। फालतू अंशके समाप्त हो जाने पर शरीरका पोषण उन पदार्थोंसे होने लगता है, जो हमारे शरीरके आवश्यक अंश हैं और जिनसे हमारे शरीरका संगठन हुआ है। मनुष्य उसी समय मरता है जब कि शरीरके फालतू अंशोकी समाप्तिके बहुत बाद उसके आवश्यक अंश भी नष्ट हो चुकते हैं। जब तक मनुष्यके शरीरके आवश्यक

अंशोंसे पोषणका आरम्भ नहीं होता तब तक मनुष्य केवल दुबला ही होता है, पर आवश्यक अंशोंके पोषणमें लग जानेके उपरान्त उसके शरीरकी ठठरी मात्र बच रहती है। उपवासकाल उसी समय तक माना जाता है जबतक कि शरीरका पोषण उसके फालतू पदार्थों पर होता रहे; पर जब आवश्यक अंशोंकी नौबत आ जाय तब वह उपवास नहीं बल्कि भूखों मरना है। आजतक ऐसा कभी नहीं सुना गया कि केवल दो तीन दिनतक अन्न न मिलनेके कारण ही कोई मनुष्य मर गया हो। उपवासके कारण मनुष्यको नियमित समय पर भले ही थोड़ी बहुत भूख लग जाय और उसके उपरान्त कुछ और समय टल जाने पर वह व्याकुल हो उठे, पर उसकी वह व्याकुलता अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। ज्यों ही हमारे शरीरके फालतू अंशोंसे हमारा पोषण आरम्भ होने लगेगा त्यों ही हमारी व्याकुलता जाती रहेगी। यह व्याकुलता कभी किसी समयमें एक या दो दिनसे अधिक नहीं ठहर सकती। इस स्थितिके उपरान्त जैसा कि आगे चलकर विस्तृत रूपमें बतलाया जायगा, मनुष्यके शरीरके फालतू अंश और उनके साथ रोग, विकार और दोष आदि पचने लगते हैं। उन सबके पच जानेके उपरान्त मनुष्यको एक बार फिर भूख लगती है और यही भूख वास्तविक होती है। यदि उस समय मनुष्यको भोजन न मिले तो फिर उसके शरीरके आवश्यक अंशोंकी बारी आ जाती है और इसके परिणामस्वरूप उसका शरीरान्त हो जाता है। यही कारण है कि एक विद्वान्ने उपवास और भूखों मरनेका अन्तर बतलाये हुए कहा है कि—" उपवासका आरम्भ भोजन छोड़ने और अन्त वास्तविक भूखमें होता है और भूखों मरनेका आरम्भ वास्तविक भूख और अन्त प्राण छूटनेसे होता है।"

जो लोग बहुत मोटे हों और अपनी मोटाई कम करना चाहते हों, उनके लिए, उपवाससे बढ़कर उत्तम और सहज और कोई उपाय नहीं हो सकता। इससे उनके शरीरकी बहुत सी फालतू चरबी और दूसरे पदार्थोंकी समाप्ति हो जायगी। युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे लोगोंने केवल उपवासकी सहायतासे अपनी बहुत सी मोटाई कम कर दी है और वे आगेकी अपेक्षा कहीं अधिक सरलतासे चलने फिरने लगे हैं।

उपवासके आरम्भमें ही शरीर कुछ क्षीण अवश्य होने लगता है, पर उससे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। अनुभवसे यह बात भी सिद्ध हो चुकी है

कि उपवासकालमें विशेष अवस्थाओंमें मनुष्यका शारीरिक बल आश्चर्य्यरूपसे बढ़ जाता है। स्वयं डाक्टर मैक्फेडनने, जिनके ग्रन्थसे इस पुस्तकके लिखनेमें बहुत सहायता मिली है और जिनका उपवाससम्बन्धी निजका अनुभव पाठकोंको आगे चलकर बतलाया जायगा, वह प्रभाव जाननेके लिए एक प्रयोग किया था जो उपवासके कारण शारीरिक बल पर पड़ता है। उपवास आरम्भ करनेके दिन वे ज़मीन पर चित लेट गये और अपनी दोनों हथेलियों पर उन्होंने ढाई मन वजनके एक आदमीको खड़ा करके लेटे लेटे हाथोंके बल ऊपरकी ओर उठाया। उस दिन वे उस आदमीको छातीसे प्राय तीन ही चार इंच ऊपर उठा सके थे, पर उपवासके अन्तिम और सातवें दिन जब उन्होंने उसी आदमीको अपनी हथेलियों पर खड़ा करके उसे ऊपरकी ओर उठाया तब वह मनुष्य उनके हाथोंकी पूरी ऊँचाई तक-छातीसे लगभग दो फुट ऊपर तक-उठ गया। अवश्य ही डाक्टर महाशयने उपवासकालमें व्यायाम नहीं छोड़ा था और नित्य वह दस मीलका चक्कर लगाते रहे थे। इसी प्रकार एक और आदमी था, जो उपवासके प्रथम दिन आध मन वजनका डंबेल अपने कन्धे तक भी न उठा सकता था, पर इक्कीस दिनोंतक उपवास करनेके उपरान्त उसने वही डंबेल सिरसे ऊपर उतनी ऊँचाई तक उठाया था, जितनी ऊँचाई तक कि उसका हाथ उठ सकता था।

मस्तिष्क और उपवास।

कुछ लोगोंको यह शंका हो सकती है कि उपवास-कालमें मस्तिष्कका ह्रास सम्भावित है, पर यह बात भी बिल्कुल व्यर्थ है। डा० एडवर्ड हूकर डेवी जो उपवासचिकित्साके आविष्कर्त्ता और सबसे बड़े पक्षपाती हैं, कहते हैं कि उपवाससे मानसिक बल कभी क्षीण नहीं होता। उनके मतमें मस्तिष्कका पोषण जिन पदार्थोंसे होता है वे पदार्थ स्वयं मस्तिष्कमें ही उपस्थित रहते हैं, शरीरके और किसी भागसे मस्तिष्क तक पोषक द्रव्य पहुँचानेकी आवश्यकता नहीं होती। उसका पोषण बिना अन्नके ही आपसे आप होता है, और वह अपना काम बराबर करता रहता है। उपवासकालमें प्राय बहुतसे लोग अपना नित्यका लिखने पढ़ने आदिका काम करते हुए देखे गये हैं। मनुष्यके शरीरको यदि तरह

तरहकी कलोंका समूह मान लिया जाय, तो मस्तिष्क उन कलोंको चलानेवाला प्रधान इंजिन ठहर सकता है। जीवनकी सारी शक्तियोंका उद्गम मस्तिष्क ही है। रोग या निराहारके कारण उसके कार्य्यमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं हो सकता। मस्तिष्क जिस समय काम करते करते थक जाता है, उस समय उसकी गई हुई शक्ति आराम करनेसे ही लौटती है, चौंकेमे जा बैठनेसे नहा। रातभर आराम करनेके कारण मस्तिष्ककी और फलत सारे शरीरकी गई हुई शक्तियाँ लौट आती हैं और प्रात काल मनुष्य कठिनसे कठिन मानसिक या शारीरिक परिश्रम करनेके योग्य हो जाता है। परीक्षा और अनुभवसे यह भी सिद्ध हुआ है कि प्रात काल जलपान न करनेवाले लोग जलपान करनेवालोंकी अपेक्षा अधिक, और रातको भोजन न करनेवाले लोग भोजन करनेवाले लोगोंकी अपेक्षा अधिक और भारी काम करनेमें समर्थ होते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि पेटसे व्यर्थ और अनावश्यक काम न लेनेके कारण मनुष्यकी बहुत सी शक्ति व्यर्थ नष्ट होनेसे बच रहती है। खेतों और खानों आदिमे कठिन परिश्रम करनेवाले लोगोंके अनुभवसे भी यह बात सिद्ध हो चुकी है।

यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो मस्तिष्क और उदर दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं। यदि पेटमे थोड़ासा भी भोजन हो और मस्तिष्कसे अधिक काम लिया जाय तो पाचन क्रियामें बड़ी बाधा पड़ती है। इसी प्रकार यदि पेट खूब भरा हो तो मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लिया जा सकता। ये दोनों ही काम परस्पर एक दूसरेके लिए वैसे ही बाधक हैं जैसे नींद आनेमें शोर और गुल। भोजनके कुछ समय बाद मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लेना चाहिए और मस्तिष्कसे सबसे अच्छा काम उसी समय लिया जा सकता है, जब कि पेटको अपनी चक्की चलानेसे फुरसत मिले। अत यह सिद्ध है कि उपवाससे मस्तिष्कके कामोंमें कोई बाधा नहीं पड़ती बल्कि उल्टे और उसमें सहायता मिलती है।

उपवासकालमें शरीरकी दशा।

जिस उपवासके गुण इस पुस्तकमें वतलाये गये हैं उसमें केवल जलको छोड़कर वाकी और सब प्रकारके खाद्य पदार्थ छोड़ देनेकी आवश्यकता होती है। जिस दिनसे आप उपवास करना चाहें उसी दिनसे आप भोजन आदि छोड़ सकते हैं और तब आपका उपवास आरम्भ हो जायगा। उपवासके पहलेसे एक दो अथवा अधिकसे अधिक तीन दिन बहुधा बड़े ही कष्टसे बीतते हैं और उन दिनोंका उतने कष्टसे बीतना बहुत ही स्वाभाविक भी है। प्रत्येक पुराना अभ्यास छोड़ने और नया अभ्यास करनेमें—चाहे वह नया अभ्यास कितना ही प्राकृतिक, सहज और लाभदायक क्यों न हो—सभी मनुष्योंको थोड़ा बहुत कष्ट अवश्य होता है। अपने शरीरको नये अभ्यासवाली परिस्थिति-तक ले जाने और उसके अनुकूल बनानेमें कुछ न कुछ परिश्रम अवश्य करना पड़ता है। जो लोग उपवासचिकित्सालयमें अपनी चिकित्सा करानेके लिए जाते हैं, आरम्भके दिनोंमें उनमेंसे बहुतोंकी दशा बहुत खराब हो जाती है, उनकी आँखोंके सामने अँधेरा आ जाता है, सिरमें चक्कर आने लगते हैं, कै होती है और उन्हें यह जान पड़ता है कि हमारा शरीर एकदम खाली हो गया है। इसके अतिरिक्त और भी कई तरहके ऐसे लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिनसे उनकी विकलता और कष्टकी चरम सीमा सी मालूम होने लगती है। पर ये सब लक्षण दो या तीन दिनसे अधिक नहीं ठहरते। उनकी असाधारण, पर केवल अभ्यासके कारण लगनेवाली और कृत्रिम भूख नष्ट हो जाती है और भोजनसे उनकी रुचि स्वयं ही हट जाती है। जो मनुष्य कष्टके ये दो तीन दिन बिता देता है उसे स्वास्थ्य और बल्के राजपथ पर पहुँचा हुआ ही समझिए।

तीसरे या चौथे दिन भोजनसे जिसकी अरुचि हो जाती है उसकी दशा प्रायः वैसी ही हो जाती है जैसी दो तीन दिन बुखार आने और छूट जाने पर होती है। जीभका स्वाद बिगड़ जाता है और उस पर कुछ पीलापन आ जाता है। इन चिह्नोंको बहुत ही शुभ समझना चाहिए, क्योंकि इनसे सिद्ध होता है कि शरीरका विकार कितनी जल्दी जल्दी बाहर निकल रहा है। इसके बाद ही वे चिह्न प्रकट होने लगते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि शरीरके सारे विकार प्रायः बाहर निकल

चुके हैं। साँस अधिक सरलतासे और गहरी चलने लगती है और फेफड़े अपना काम उत्तमतासे करने लगते हैं। पर इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि बहुधा उपवास करनेवालोंके लक्षण एक दूसरेसे भिन्न हुआ करते हैं, और सब लोगोंमें समान रूपसे पाई जानेवाली बातें बहुत ही कम हैं। यदि एक ही मनुष्य दो बार अधिक दिनोंतक उपवास करे तो उसके दोनों बारके लक्षण एक दूसरेसे बहुत भिन्न होंगे, पर इसमें सन्देह नहीं कि सब प्रकारके लक्षणोंवाले उपवासोंका फल निश्चयात्मक और एकसा स्वास्थ्यप्रद होता है। सबके परिणामस्वरूप शरीरके सारे विकार, दोष, विष और रोग आदि बाहर निकल जाते हैं और मनुष्यके शरीरमें बल और मुख पर तेज आ जाता है। सभी उपवास करनेवालोंको अन्तमें स्वाभाविक भूख लगती है और दिनपर दिन उनका शरीर अधिक बलिष्ठ और सुखी होने लगता है।

उपवासके आरम्भमें सिर-दर्द, चक्कर आदि तरह तरहके कष्टोंका मुख्य कारण यही है कि हमारा शरीर भीतरी मल और विकार बाहर निकालनेका प्रयत्न करता है। उस दशामें यदि गुदाके मार्गसे गरम पानीका एनिमा लिया जाय और पेट तथा कमरके ऊपरी भागमें हल्का सेक किया जाय तो पेटमेंसे मल और विकारके बाहर निकलनेमें और भी सुभीता हो जाता है और कष्टसे छुटकारा हो जाता है। उपवासके आरम्भमें कान तथा आँखमें भी पीड़ा होती है; पर उपवासके अन्तमें ये भाग भी बिलकुल नीरोग हो जाते हैं। तरह तरहके इन कष्टों और उपद्रवोंसे जो केवल आरम्भमें ही और वह भी शरीरकी संशुद्धिके लिए ही होते हैं, कभी घबराना न चाहिए। उस दशामें हमारे शरीरके प्रत्येक अंग और प्रत्येक शक्तिको विकार और रोग आदि शत्रुओंके साथ उसी प्रकार अपना सारा बल लगाकर लड़ना पड़ता है, जिस प्रकार प्राण पर आ बननेके समय किसी मनुष्यको अपने शत्रुके साथ अथवा अकेले जंगलमें किसी जंगली जानवरके साथ लड़ना पड़ता है। ज्यों ज्यों कष्ट बढ़ते जायँ त्यों त्यों यही समझना चाहिए कि विकारोंका नाश हो रहा है और उनका अन्त समीप ही है। विकारोंका नाश होते ही कष्टोंका भी अन्त हो जाता है और मनुष्यकी दशा आपसे आप सुधरने लगती है।

कुछ अवस्थाओंमें उपवास करनेवालोंके शरीरसे बहुत ही बदबूदार पसीना निकलता है। यह भी शरीरसे विकारके बाहर निकलनेका बहुत बड़ा लक्षण है। कुछ लोगोंकी जीभका स्वाद उपवासके चौथे या पाँचवें दिन बेतरह बिगड़ जाता है और उस दशामें यदि उन्हें वमन आवे तो कुछ आश्चर्य्य नहीं। किसी किसी उपवास करनेवालेका मुँह बहुत खराब हो जाता है और उसमेंसे बहुत लार बहती है। कभी कभी उसकी जीभ और होंठ पर छाले भी पड़ जाते हैं। बहुत अधिक मिठाइयाँ खानेवालों और पित्तके दोषवालोंको अपेक्षाकृत कुछ अधिक कष्ट होता है। कुछ उपवास करनेवालोंको अठवारों तक कै होती रहती है। इसी प्रकारके और भी अनेक कष्ट होते रहते हैं। कष्टोंकी इस असमानताका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्यके शरीरकी भीतरी अवस्था एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न होती है और प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें एक विलक्षण प्रकारका विकार होता है। अपनी स्थिति और सुविधाके अनुसार शरीर उन विकारोंको जिस मार्गसे और जिस प्रकार सरलतापूर्वक निकाल सकता है, वह उसी मार्गसे और उसी प्रकार उन्हें बाहर निकालता है। जिस मनुष्यके शरीरमें जितना अधिक विकार होता है उपवासकालमें उसे उतना ही अधिक कष्ट होता है और जिसे जितना अधिक कष्ट होता है, उपवासकी समाप्ति पर वह उतना ही अधिक नीरोग और स्वस्थ हो जाता है।

उपवाससम्बन्धी अनुभव।

उपवासकालमें शरीरकी जो दशा होती है, उसका सबसे अच्छा पता उन लोगोंके लिखित अनुभवोंसे हो सकता है, जो प्रसिद्ध उपवासकर्त्ताओंने लिख रक्खे हैं। यद्यपि इस प्रकारके लिखित अनुभव संख्यामें बहुत अधिक और विस्तृत हैं तथापि उनमेंसे कुछ चुने हुए अनुभवोंका सारांश यहाँ पर दे देना बहुत ही उपयुक्त और आवश्यक जान पड़ता है। सबसे पहले डाक्टर बरनर मैकफेडनके निजके अनुभवको ही लीजिए जो प्राकृतिक चिकित्साके बड़े अच्छे विद्वान् हैं, जिन्होंने कई प्राकृतिक चिकित्सालय खोलकर हजारों रोगियोंको अच्छा किया है और जिनके बनाये हुए तत्सम्बन्धी बीसियों अच्छे अच्छे ग्रन्थों और

विश्वकोशके पाँच खडोंका आश्चर्यजनक प्रचार हुआ है । यह रामकहानी आपके मुँहसे ही सुनी जानेके योग्य है, अत यह आपके शब्दोंमें ही यहाँ पर दी जाती है । आप कहते हैं —

" मुझे पहले न्यूमेनियाके सिवा और भी कई छोटे मोटे रोग थे । उस समय तक उपवासचिकित्साके सम्बन्धमें कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे, पर मैंने बिना उन्हें पढे ही अपने लिए चिकित्साके सिद्धान्त स्वय स्थिर किये । ये सिद्धान्त मुझे इतने गुणकारी प्रतीत हुए हैं कि गत पन्द्रह वर्षोंसे मैंने इनके सिवा दूसरे चिकित्सा सिद्धान्तोंका ग्रहण ही नहीं किया । पहले मैं चार दिनतकके उपवास किया करता था और उस बीचमें भी कभी कभी एकाध सेब या और कोई फल खा लेता था । इसके बाद मैंने बिना किसी प्रकारके भोजनके एक सप्ताहतक रहना निश्चय किया । उपवासके पहले दिन मैं तौलमें ढाई सेर और दूसरे दिन दो सेर घट गया । इसी प्रकार मेरा शरीर नित्य तौलमें घटने लगा, पर साथ ही उस घटनेका मान भी घटता जाता था । यहाँतक कि सातवें दिन में तौलमें केवल आध सेर घटा । सब मिलाकर सात दिनोंमें मेरा शरीर साढे सात सेर घट गया था ।

" और लोग तौलमें इससे अधिक घट सकते हैं, पर मेरे कम घटनेका मुख्य कारण यह था कि मैं नित्य खूब व्यायाम करता था । मैं रोज दस मीलका चक्कर लगाया करता था । इस बीचमें उपवासके केवल दूसरे दिन मुझे सबसे अधिक दुर्बलता मालूम हुई थी । मैं सबेरे उठते ही टहलने चला जाता था । आरम्भमें मुझे कुछ दुर्बलता मालूम होती थी, पर दो एक माल चल चुकनेके बाद यह दुर्बलता न रह जाती थी । किसी स्थानपर थोडी देर तक बैठ जानेके उपरान्त उठनेके समय भी मुझे बहुत दुर्बलता जान पडती थी । उस दिन तक मुझे कुछ अधिक घबराहट रही । मैं अपने नित्यके काम बराबर और नियमपूर्वक किया करता था । मानसिक परिश्रम करनेमें मुझे और दिनोंकी अपेक्षा कम कष्ट होता था और मेरा मस्तिष्क बिल्कुल स्वच्छ जान पडता था । पेटमें जो थोडी बहुत गडबडी होती थी वह बहुतसा ठडा पानी पीनेसे शान्त हो जाती थी । उपवासके छठे और सातवें दिन बडे ही आरामसे बीते थे । यद्यपि मैं समझता था कि थोडे प्रयत्नसे ही मैं और तीन चार सप्ताह तक उपवास कर सकता हूँ, तथापि दोन्द

पूरा हो जानेके कारण मैंने वैसा करनेकी आवश्यकता न समझी। चौथे दिन मेरी इच्छा कुछ खानेकी हुई थी। साधारणतः इस प्रकारकी भूखसे बचनेके लिए मनको किसी दूसरी तरफ लगा देनेसे बहुत लाभ होता है। पर उस दिन मुझे कोई काम न था, दो चार दोस्तोंसे बातचीत करनेके बाद भी समय बच ही गया। भूख अधिक जोर कर रही थी, इसलिए मैं किसी भोजनागारमें जानेके विचारसे चल पड़ा। कुछ दूर चलनेके बाद मेरी प्रवृत्ति बदल गई और मैं भोजनागारमें जानेके बदले पासकी एक व्यायामशालामें चला गया और आध घंटे तक मैंने वहाँ खूब कसरत की। उस समय उपवास छोड़नेकी मेरी इच्छा एकदम जाती रही। अवश्य ही उन दिनों मेरा चेहरा बहुत उतर गया था और आँखें बहुत धँस गई थीं। पर सातवें दिन मेरे शरीरमें आश्चर्यजनक बल आ गया था। उपवासके मध्यमे तो मैं केवल पचास पाउंडका डंबल ही उठाता था, पर उसके अन्तिम दिन मैंने पहले साठ तब सत्तर और अन्तमे सौ पाउंडतकका डंबल उठा लिया। उसी दिनसे मैंने निश्चय कर लिया कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि उपवास करनेसे शरीरकी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है।"

मिस हाल नामकी एक महिलाको एक बार लकवा मार गया था। जब अनेक प्रकारके औषधोपचारोंसे उनका रोग अच्छा न हुआ तब अन्तमे उन्होंने चालीस दिनों तक उपवास किया, इससे उनका शरीर एकदम निरोग हो गया था। अपने उपवासके सम्बन्धमें वे लिखती हैं --

"उपवासके चालीस दिन बितानेमें मुझे बहुत अधिक कठिनता नहीं हुई। जब कभी मुझे अधिक भूख मालूम होती थी तब उसे शान्त करनेके लिए मैं केवल पानी पी लेती थी। आरम्भमे मेरे मित्र, सम्बन्धी और शुभचिन्तक मुझसे भोजनके लिए बहुत आग्रह किया करते थे, पर मुझे स्वभावतः बिना भोजनके रहना ही अधिक उत्तम और सुखप्रद जान पड़ता था, इसीलिए मैं उन लोगोंको साफ जवाब दे दिया करती थी।

"उपवासकालमें मैं नित्य एक डाक्टरके आफिसमें छः घंटे तक काम किया करती थी और नित्य बहुत दूर तक पैदल चला करती थी। उपवासके चौथे दिनसे मैं उतनी तेजीसे चलने लगी कि जितनी तेजीसे पहले कभी नहीं चल सकती थी। पहले बीस दिनोंमें ही मेरे शरीरमें बहुत कुछ शक्ति और फुरती

आ गई था । उन्हीं दिनों मुझे आरोग्यताका वास्तविक सुख मिलने लगा और शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि न रह जानेके कारण मैं बिलकुल निश्चिन्त हो गई थी ।

" मेरे शरीरका मास धीरे धीरे बहुत कम होता आता था और कुछ अधिक सरदी सी मालूम होती थी । मैं समझती हूँ कि यदि मैं जाड़ेके दिनोंमें उपवास करती तो सर्दीके कारण मुझे और भी कठिनता होती । उपवासकालमें मुझे सबसे बडा लाभ यह हुआ कि मेरी विचार शक्ति बहुत घट गई थी । उपवासके बीस दिन बीत जानेके बाद भोजन करनेके लिए मेरे मित्रोंका आग्रह और भी बढ गया था, क्योंकि उन दिनों में देखनमें बहुत ही दुर्बल जान पडता थी । पर मैं इस ओरसे एकदम निश्चिन्त थी और मुझे भोजनकी कोई आवश्यकता जान न पडती थी । कभी कभी मेरी इच्छाके विरुद्ध भी मेरी आँखें झपने लगतीं थीं और मुझ चक्कर सा मालूम होता था । मुझे नींद बहुत अधिक आती थी और मैं सन्ध्याके सात बजे ही बिस्तर पर जाकर पड जाती थी । उस समय मुझे बहुत अधिक थकावट मालूम होती थी ।

" उपवासके अठाईसवें दिन मुझे विशेष कष्ट हुआ था । मेरा बायाँ हाथ जिसे लकवा मार गया था, अपेक्षाकृत बहुत अधिक सूज गया था और मुझे उसका चिन्ताने आ घेरा था । उस समय यह बात मेरी समझमें न आई थी, कि प्रकृति मेरे हाथके रोगका नाश कर रही है ।

" उन्तालीसवें दिन डाक्टरने मेरी जाँचकी परीक्षा की । उस दिन उसे मेरा शरीर बहुत ही स्वस्थ दशामें जान पडा । उस दिन उसने कह दिया कि अब तुम्हें भूख रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । चालीसकी संख्या पूरी करनेके विचारसे और एक दिन मैंने भोजन नहीं किया । उस अन्तिम दिन मैं बडे हा आनन्दमें रही और मने नित्यकी अपेक्षा कहीं अधिक काम किया । इन चालीस दिनोंमें म तौलमें प्राय सत्ताईस पाउंड घट गई थी । "

इकतालीसवें दिन मैंने आधा सन्तरा खाया, पर वह आधा सन्तरा भी मुझे जबरदस्ती खाना पड़ा था । क्योंकि उस समय मुझे तनिक भी भूख न थी । सन्तरेमें भी मुझे कोई स्वाद न आता था । उसके दूसरे दिनसे मुझे भूख लगने

लगी और मैंने दो दो घंटोंके बाद आधा आधा मन्तरा खाना आरम्भ किया। इस प्रकार धीरे धीरे मेरी भूख बढ़ती गई। उपवास-कालके बीतनेके तीन सप्ताह बाद में इच्छानुसार सब चीजे खानेके योग्य हो गई। तबसे मेरा शरीर बहुत ही नीरोग है और मेरे जिस हाथको लकवा मार गया था उसमें पहलेकी अपेक्षा अधिक बल आ गया है।"

प्रायः तीस वर्षसे अधिक हुए कि डाक्टर हेनरी एन० टैनरने एक बार चालीस दिनों तक उपवास किया था। आपने अपने उपवासके आरम्भिक पन्दरह दिनों तक जल भी नहीं पीया था। उपवासचिकित्सकोंका मत है कि भोजनके विना तो मनुष्य जीवित रह सकता है, पर जलके विना उसके प्राण नहीं बच सकते। डाक्टर टैनरने अपने निजके अनुभवसे इस सिद्धान्तको भी बहुतसे अंशोंमें खंडित कर दिया। पर इसमें सन्देह नहीं कि जिस दिनसे उन्होंने पानी पीना आरम्भ किया था उस दिनसे उनका बल बराबर बढ़ने लगा था। पहले ही जिस समय उन्होंने जल पीया था, एक समाचारपत्रके संवाददाताके साथ उन्होंने दौड़नेकी शर्त लगाई थी। संवाददाता समझता था कि इतने दिनों तक निराहार रहनेके कारण डाक्टर महाशयमें दौड़नेकी कौन कहे, चलनेकी भी शक्ति न होगी। इस तथा और भी कई कारणोंसे डा० टैनरके उपवासकी युरोप और अमेरिकामें खूब चर्चा फैली थी। उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों बाद डाक्टर टैनर एकान्तवास करनेके लिए किसी जंगलमें चले गये थे। समाचारपत्रोंमें उनकी मृत्युका झूठा समाचार छप गया था। पर हालमें डाक्टर मैकफेडनने उनके पास एक पत्र भेज कर उनसे प्रार्थना की थी कि वे उपवासके सम्बन्धमें अपना कुछ अनुभव लिख भेजें। उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार करके उपवासके बहुतसे लाभ भी लिख भेजे थे। बहुत वृद्ध हो जाने पर भी वे अब तक बड़े ही हृष्ट पुष्ट और नीरोग हैं।

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध लेखक मार्क ट्वेनने जो एक बार भारत भी हो गये हैं, उपवासके सभी गुणोंको मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। उन्हें जब कभी जुकाम या बुखार होता तभी वे तुरन्त उपवास करते थे। उपवास-चिकित्सा सम्बन्धी उनका लिखा हुआ "At the Appetite Cure" नामक एक बहुत अच्छा ग्रन्थ भी है, जिसमें यह बतलाया गया है कि जब तक खूब भूख न लगे तबतक कभी भोजन न करना चाहिए। अमेरिकाके अप्टन सिंक्लेअर नामक

सुप्रसिद्ध लेखकने उपवाससे वहुत कुछ लाभ उठाया है और यथासाध्य उसका समर्थन करके लोगोंको उसके अनन्त गुण बतलाये हैं।

सबसे अधिक लंबा उपवास रिचर्ड फासेल नामक एक व्यक्तिने किया था। इसने नब्बे दिनों तक किसी प्रकारका आहार ग्रहण नहीं किया था। फासेलको भीषण रूपसे जलोदर रोग हो गया था और उसके पैरों तकमें बहुत सूजन आ गई थी। इस रोगके कारण उसका शरीर तौलमें प्राय पाँच मन हो गया था। वह एक होटलका मालिक था, पर शरीरके बहुत अधिक भारी और रोगी हो जानेके कारण वह चलने फिरनेमें नितान्त असमर्थ हो गया था। जब वह सब प्रकारके औषधोपचारसे एकदम निराश हो गया तब उसने उपवासकी शरण ली। एक बार उपवास करनेके उपरान्त वह अच्छा हो गया था, पर उपवासके अन्तमें उसने भोजन करनेमें कई भारी भूलें कीं, जिससे वह फिर बीमार हो गया। उस समय उसका शरीर तौलमें घट कर प्राय. पौने चार मन रह गया था। दूसरी बार उसने नब्बे दिनों तक* उपवास किया। उसके ये दोनों उपवास डा० मैकफेडनकी देखरेखमें हुए थे। इतने अधिक दिनोंका उपवास शायद ही और किसीने आज तक किया हो। अपने उपवासकालका अधिकांश उसने या तो काम करनेमें और या व्यायाम करनेमें ही बिताया था। दूसरे उपवासके आरम्भिक चालीस दिनों तक वह नित्य पन्द्रह मील पैदल चला करता था और इसके अतिरिक्त बहुत कुछ कसरत भी करता था। भूखके कारण उसे केवल पहले सप्ताहमें ही कुछ कठिनता और बेचैनी हुई थी; इसके बाद उसे कभी कोई कष्ट नहीं हुआ। इसके बाद उसे फिर कभी भूख लगी ही नहीं। उपवासकालमें वह नित्य पाँच छ बड़े बड़े गिलास पानीके पीता था और कभी कभी उनमें दो चार बूँद नीबूका रस भी छोड़ लेता था। उपवास समाप्त करनेके उपरान्त तीन चार दिन तक भी उसके पेटमें किसी प्रकारका भोजन न ठहरता था। इसके बाद धीरे धीरे उसे भोजन पचने लगा और उसका शरीर बिलकुल नीरोग और आगेसे बहुत हल्का हो गया।

इस अवसर पर हम दो एक ऐसे उदाहरण भी दे देना चाहते हैं, जिनसे यद्यपि उपवासके दैनिक क्रम आदिका तो पता नहीं चलता, पर उसकी सर्वश्रेष्ठ उपयो-

गिताका पता अवश्य लगता है। सन् १९०३ ई० में अमेरिकामें एक मनुष्यको अचानक एक रिवाल्वरके छूट जानेसे गोली लग गई और वह गोली उसके गुरदे, जिगर और दाहिने फेफड़ेको चीरती तथा पाँच पसलियाँ तोड़ती हुई निकल गई। बड़े बड़े डाक्टरोंने उसे देखकर कह दिया था कि यह किसी प्रकार नहीं बच सकता और थोड़ी ही देरमें मर जायगा। पर यह मनुष्य उपवास-चिकित्साका पक्षपाती था इसलिए उसने दस दिनों तक बिलकुल कुछ न खाया। इस बीचमें प्रकृतिको उसे चंगा करनेका समय मिल गया और वह एक मासके उपरान्त बड़े आनन्दसे चलने फिरनेके योग्य हो गया। इसी प्रकार एक और आदमीको रेलमें घुटना दब जानेके कारण बहुत बड़ी चोट आ गई थी। डाक्टरोंने महीनों उसके शरीरमें पिचकारियोंसे अफीम तथा दूसरे मादक द्रव्य पहुँचाये, बराबर ह्विस्की और दूधका सेवन कराया और पचेरियो दवाइयाँ उसके पेटमें उतार दीं। पर किसीसे कुछ भी फल न हुआ और वह मनुष्य तौलमें पैंतालीस सेर घट गया। अन्तमें डाक्टरोंने निराश होकर उसकी चिकित्सा छोड़ दी और तब वह उपवास-चिकित्सकोंके पाले पड़ा। पाँच मास तक बिना किसी प्रकारके अन्नके रहकर अन्तमें वह मनुष्य सब प्रकारसे नीरोग और हट्टा कट्टा हो गया।

इसी प्रकार और भी सैकड़ों हजारों ऐसे आदमियोंके वर्णन दिये जा सकते हैं जो चालीस चालीस और पचास पचास दिनोंतक उपवास करके अजीर्ण, बवासीर, गरमी, कण्ठमाला, तापतिल्ली आदि सब तरहके रोगोंसे मुक्त हो गये हैं। यदि उन सबके विवरण संग्रह किये जायँ तो एक बहुत बड़ा पोथा हो सकता है। अँगरेजीमें यह पोथा प्राय तीन हजार पृष्ठोंमें मौजूद भी है, जिसमें हजारों रोगियोंके विवरणके अतिरिक्त सैकड़ों ऐसे रोगियोंके चित्र भी है, जिन्हें बड़े बड़े डाक्टरोंने जवाब दे दिया था और जो केवल उपवासकी सहायतासे ही बिलकुल चंगे और नीरोग हो गये हैं।

उपवास कालमें भयके चिह्न ।

साधारणत: उपवास-कालमे किसी प्रकारका भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । डा० मैफफेडन जोर देकर यह बात कहते हैं कि मेरे हजारों रोगियोंमेंसे जिन्हें मैंने लम्बे चौड़े उपवास कराये, एक भी नहीं मरा; और प्राय प्रत्येक दशामें उपवाससे सदा लाभ ही हुआ, हानि कभी नहीं हुई । तथापि जो लोग बहुत अधिक रोगी, दुर्बल या असमर्थ हो गये हों उन्हें भयके कुछ चिह्नोंका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिए ।

उपवास-कालमें कभी तो रोगीकी नाड़ी, बहुत तेज चलने लगती है और कभी बहुत धीमी । यदि साधारणत नाड़ी एक मिनटमें ६० से ९० बार तक चलती हो तब तो किसी प्रकारकी चिन्ताकी बात नहीं है, पर यदि वह इससे कम या अधिक चले और उपवास करनेवाला किसी योग्य डाक्टरकी देखरेखमें न रहकर स्वयं ही उपवास करता हो तो आवश्यकता पड़ने पर वह अपना उपवास छोड़ भी सकता है ।

उपवास-कालमें यह विश्वास मनसे एकदम निकाल देना चाहिए कि बिना भोजनके मनुष्यका शरीर चल ही नहीं सकता । इस विश्वासके कारण कभी कभी बहुत हानि हो जाती है । उपवास-कालमें बहुधा रोगीोंका जी घुटने लगता है और उन्हें बेहोशी आने लगती है । बहुतसे अंशोंमें इसका मुख्य कारण उक्त मिथ्या विश्वास ही हुआ करता है । दुर्बल हृदयके लोगों पर इस विश्वासका और भी बुरा प्रभाव पड़ता है । उस बुरे प्रभावसे बचनेके लिए उपवास-कालमें इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि मन सब प्रकारसे सन्तुष्ट और शान्त रहे, उसमें किसी प्रकारकी उद्विग्नता या चिन्ता न हो । उपवासकालमें जिस रोगी-का मन इस स्थितिमें रहता है, उसे उपवाससे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है और वह बहुत शीघ्र नीरोग हो जाता है ।

उपवासकालमें यद्यपि शरीर बहुत दुर्बल और कृश हो जाता है, तथापि इससे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है । बहुधा यह दुर्बलता उन्हीं विषोंके कारण होती है जो रोगीके रक्तमें मिले हुए होते हैं । यदि कसरत करने और खूब घूमने, फिरने या टहलनेसे भी यह दुर्बलता कम न हो और रोगीके हरदम

बिस्तर पर पडे रहनेकी नौबत आ जाय, तो उस दशामें भी उपवास छोड देना ही सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि वास्तवमें वह निर्बलता कोई विशेष या भारी हानि नहीं पहुँचा सकती तो भी यदि रोगी किसी योग्य डाक्टरकी देख रेखमें न हो तो उपवास छोड देना ही बुद्धिमत्ता है।

डा॰ मैकफेडनके चिकित्सालयमें बहुतसे ऐसे रोगी भी पहुँच चुके हैं, जिनकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल थी। उन लोगोंने केवल अपनी इच्छाके कारण ही आवश्यकतासे अधिक दिनोंतक उपवास किया था। उनमेंसे अधिकांशको उपवाससे लाभके बदले हानि ही हुई थी। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि उपवासकालमें पहले शरीरके अनावश्यक और फाल्तू पदार्थ हमारी जठराग्निकी नजर होते हैं और तदुपरान्त शरीरके आवश्यक पदार्थोंकी बारी आती है। इसलिए कदापि वह दशा न आने देनी चाहिए जिसमें आवश्यक पदार्थोंका नाश आरम्भ होता है। इसकी एक बहुत अच्छी पहचान भी है। जब तक मनुष्य मीलोंके चक्कर लगाने और खूब कसरत करनेके योग्य रहे—उसके शरीरका बल बराबर बना रहे—तब तक उपवास जारी रखना चाहिए, पर जब शरीरका बल घटने लगे तब तुरन्त उपवास छोड देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि बहुत लम्बे उपवासके बाद भोजन आरम्भ करनेमें भी बडी सावधानीकी आवश्यकता होती है। उपवास जितने ही अधिक दिनोंका हो, उसके छोडने पर भोजन भी उतनी ही अल्प मात्रामें होना चाहिए। उपवास किस प्रकार छोडना चाहिए, इस विषयमें अधिक बातें आगे चलकर कही जायँगी। पिछले पृष्ठोंमें पाठक मिस हाल्का विवरण पढ चुके होंगे जिन्होंने चालीस दिनोंतक उपवास करके लक्वेसे छुटकारा पाया था। मिस हालने उपवास छोडनेके बाद अपना भोजन आधे सन्तरेसे आरम्भ किया था। पर उनका पक्वाशय उतना भोजन पचानेमें भी समर्थ न था, इसलिए उन्हें कुछ समय तक कष्ट उठाना पडा था। मि॰ मैकफेडनने उनकी दशा देखकर यह सिद्धान्त निकाला था कि उन्हें अथवा उनके समान लंबे उपवास करनेवाले दूसरे रोगियोंको—जिनका पक्वाशय बहुत अच्छी दशामें न हो—आधे सन्तरेसे नहीं बल्कि आधे सन्तरेके रस मात्रसे भोजन आरम्भ करना चाहिए। उचित समय तक उपवास करनेसे कभी कोई हानि नहीं होती, हानि उसी

समय होता है जब उपवास छोड़नेके समय भोजनका उचित ध्यान न रक्खा जाय और उसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम हो। उपवास-कालमे यदि भयका कोइ चिह्न हो तो एलोपैथिक या होमियोपैथिक चिकित्सा करनेवाले डाक्टरोंसे सलाह लेनेकी अपेक्षा स्वय अपनी बुद्धिसे काम लेना ही अधिक उत्तम है। स्वय हमारी प्रकृति ही हमारा सबसे बडा रक्षक और शुभचिन्तक है। बहुधा वही हमें समय पर हमारा कर्तव्य बतलाता रहेगा। भयके अधिक चिह्न उसी दशामे उत्पन्न होंगे जब कि उपवास अधिक दिनोंतक किया जायगा। पर साधारणत कभी अधिक दिनोंका उपवास न करना चाहिए। सब प्रकारके भयके चिह्नोंसे बचनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य उसका आरम्भ बहुत थोड़ेसे करे। यदि मनुष्यका शरीर साधारणत स्वस्थ रहता हो पर उसके अन्दर कोई रोग हो, तो उसे उचित है कि पहले महीने वह एक या दो दिन तक उपवास करे। तीन चार महीने तक इसी प्रकार उपवास करनेके उपरान्त वह तीन चार दिनोंतक उपवास करे। इस प्रकार साल दो साल बाद वह आठ दस दिन तकका उपवास करनेके योग्य हो जायगा। उस दशामें किसी प्रकारके भयके चिह्नोंके उत्पन्न होनेका कोइ कारण न रह जायगा। यह तो हुई साधारणत स्वस्थ और नीरोग मनुष्योंकी बात। पर यदि मनुष्यको अचानक कोई भारी रोग आ घेरे, तो केवल उस रोगके कारण ही वह आठ दस दिनोंतक निराहार रह सकता है और उसके शरीरमे भयका कोई चिह्न दिखलाई नहीं दे सकता।

अच्छे उपवासका लक्षण यह है कि मनुष्यका मन बहुत ही स्वच्छ और सन्तुष्ट रहे, उसमें किसी प्रकारकी घबराहट या बेचैनी आदि न हो। यदि मनमे प्रसन्नताके बदले घबराहट या बेचैनी हो और इच्छा-शक्ति निर्बल पड़ती जाय, तो उपवासकालमें बहुत सावधानीसे रहना चाहिए और यदि उस प्रकार रह सकना असम्भव हो और किसी योग्य उपवास चिकित्सककी सम्मति भी न मिल सकती हो तो उपवास छोड़ देना ही उत्तम है।

आहार-कालमें भी बहुतसे डाक्टर सम्मति दिया करते हैं कि भोजनके साथ कभी जल न पीना चाहिए। पर यह बात ठीक नहीं है। साधारणतः सब लोगोंको और विशेषतः उपवास कर चुकनेवाले लोगोंको भोजनके साथ और उसके उपरान्त बीचबीचमें भी यथेष्ट जलका व्यवहार करना चाहिए। हमारे यहाँके वैद्यकशास्त्रमें जलको अमृत कहा है और उसके विषयमें यह बतलाया गया है कि उससे कभी किसी दशामें कोई हानि नहीं होती। बहुतसे डाक्टर, वैद्य और हकीम आदि ज्वर-कालमें अपने रोगियोंको पानी नहीं पीने देते। पर यह बड़ी भूल है। बहुधा बहुत अधिक पानीसे और कुछ विशेष दशाओंमें थोड़े पानीसे बहुत ही लाभ होता है। पर पानी न पीना सदा हानिकारक ही होता है। इसलिए प्रत्येक रोगी और नीरोगी, अशक्त और सशक्त सबको स्वच्छ, ताजे और मीठे जलका खूब सेवन करना चाहिए। अन्नकी अपेक्षा जलमें कहीं अधिक संजीविनी शक्ति होती है। जल सदा शरीरको लाभ ही पहुँचाता है, हानि नहीं।

जलके अतिरिक्त एक और पदार्थ है, उपवास-कालमें जिसका व्यवहार करनेसे बहुत कुछ लाभ होता है। वह पदार्थ है शुद्ध और साफ की हुई रेत। यह रेत थोड़ी थोड़ी मात्रामें उपवास-कालमें फाँकी जाती है। शायद हमारे पाठक रेत फाँकनेका नाम सुन कर हँस पड़ेंगे और यह बात है भी बहुतसे अंशोंमें हँसी आने योग्य ही; पर वास्तवमें रेत फाँकनेका शरीर पर बहुत ही अच्छा परिणाम होता है। रेत फाँकनेके गुणोंकी जानकारी पहले पहल बोस्टन नगरके प्रो० विलियम विंडसरने प्राप्त की थी। उन्होंने यह सिद्धान्त निकाला था कि मनुष्यके अतिरिक्त प्रायः सभी जानवर अपने भोजनमें थोड़ी बहुत रेत सदा और अवश्य मिला लेते हैं। उस रेतसे उनकी भोजनवाहिनी नलिका सदा बहुत साफ और स्वच्छ रहती है और उसके कारण भोजन गुठलोंमें बँधकर कब्जियत नहीं उत्पन्न कर सकता। स्वयं डाक्टर मैकफेडनने जब यह विलक्षण सिद्धान्त सुना तब उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ था; क्योंकि रेतको कोई मनुष्यका स्वाभाविक खाद्य नहीं मान सकता। पर जब डाक्टर महाशयने लगातार तीन वर्षों तक हजारों रोगियोंको उसका व्यवहार कराया तब उसके गुणोंके सम्बन्धमें उनका पहला आश्चर्य और भी बढ़ गया। हजारोंमेंसे एक रोगी भी ऐसा न निकला जिसे रेतके व्यवहारसे किसी प्रकारकी हानि पहुँची हो।

फाँकनेके लिए रेत ऐसी होनी चाहिए जिसके दाने गोल और खुरदुरे हों, जो पानीमें न घुल सके और जो बहुत साफ हो। जिस रेतके दाने नुकीले या धार-दार हों उसका व्यवहार नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे शरीरके भीतरी कोमल भागोंपर रगड़ लगती है। इसके अतिरिक्त वैसी रेतके दाने परस्पर एक दूसरेके साथ मिल जाते हैं। पर गोल दाने परस्पर एक दूसरेसे अलग रहते हैं, और वे ही हमारी कब्जियत दूर कर सकते हैं। उनसे बिना किसी प्रकारकी कठिनाई या कष्टके हमारी अँतड़ियाँ आदि बिलकुल साफ और मल-रहित हो जाती हैं। इस स्थान पर कदाचित् यह बतलानेकी कोई आवश्यकता न होगी कि फाँकनेके लिए रेत बहुत ही साफ होनी चाहिए। सफेद रेतकी अपेक्षा भूरे काले रंगकी रेत बहुत अच्छी होती है। यदि रेत साफ न हो तो उसे साफ कर लेना चाहिए। खूब खौलते हुए गरम पानीमें उबालनेमें रेत साफ हो जाती है। साधारणतः दिन भरमें एकसे तीन चम्मच तक रेत फाकी जा सकती है। रेत फाँकनेके उपरान्त ऊपरसे बहुतसा स्वच्छ जल पीना चाहिए। उपवास न करनेवाले लोगोंको भी यदि बहुत कब्जियत हो तो वे थोड़ीसी रेत फाँककर और ऊपरसे स्वच्छ जल पीकर अपनी कब्जियत दूर कर सकते हैं। कब्जियत दूर करनेका यह बहुत ही साधा और सर्वोत्तम उपाय है।

उपवासकालमें एनिमा।

एनिमा उस क्रियाका नाम है जिससे गुदाके मार्गसे अँतड़ियाँ तथा पेटके दूसरे भीतरी भाग धोये जाते हैं। एलोपैथिक चिकित्सक बहुधा इसका व्यवहार करते हैं और कुछ विशेष प्रकारकी पिचकारियोंसे औषधि मिश्रित जल गुदाद्वारा पेटमें पहुँचाते हैं। इन पिचकारियोंको भी एनिमा कहते हैं। अँगरेजी दवा बेचनेवालोंके यहाँ तीन चार रुपयेमें एनिमा मिलता है। इस क्रियासे पेट और पेड़ू आदिमें फँसा हुआ सारा दूषित और गन्दा मल बाहर निकल जाता है और रोगीकी दशा बहुत सुधर जाती है। कब्जियत और अँतड़ियोंकी दूसरी बीमारियोंके समय प्रायः इसका व्यवहार होता है। हम पहले कह आये हैं कि शरीरको नीरोग और शुद्ध करनेके लिए जहाँ तक हो सके प्राकृतिक नियमोंसे काम लेना चाहिए। अप्राकृतिक नियमोंसे काम लेनेका

परिणाम बहुत बुरा होता है। एनिमाका विधान बतलानेके कारण हम पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि हम भी एक अप्राकृतिक उपाय बतला रहे हैं। पर इस सम्बन्धमें केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि जुलाबकी गोलियों या रेंड़ीके तेल आदिकी तरह एनिमाका कोई ऐसा परिणाम नहीं होता जो शरीरमें अधिक समय तक स्थायी रूपसे रह कर हमें हानि पहुँचावे। ऐसी दशामें उसे विधेय बतलाते हुए उसकी आवश्यकता और लाभोंका वर्णन कर देना भी यहाँ उचित जान पड़ता है।

किसी मनुष्यके नीरोग होनेका सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उसे पैखाना साफ आवे। यदि उसे किसी प्रकारकी कब्जियत हो तो यही माना जायगा कि अभी उसके शरीरमें कुछ रोग बाकी है। एनिमाके व्यवहारसे मनुष्यकी कब्जियत बहुत ही सरलतापूर्वक—बिना उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये—दूर हो जाती है और उसका मल-मार्ग बहुत ही सहजमें साफ हो जाता है। हमारी आँतोंमें यह गुण है कि वे सदा फैलती और सिकुड़ती रहती हैं। भोजन पचनेके उपरान्त जो अनावश्यक और दूषित पदार्थ बच रहते हैं वह आँतोंकी इसी फैलने और सिकुड़नेवाली क्रियाके कारण मल-रूपमें हमारे शरीरके बाहर निकलता है। जिस समय मनुष्य उपवास आरम्भ करता है, उस समय भोजनके अभावके कारण आँतोंका सिकुड़ना और फैलना बन्द हो जाता है; जिसके कारण मल हमारे शरीरसे बाहर नहीं निकल सकता। उस समय आँतोंके ऊपरका मल ऊपर ही रह जाता है और उसी मलको सरलतापूर्वक बाहर निकालनेके लिए एनिमाका उपयोग लाभदायक होता है।

इसके अतिरिक्त एनिमासे और भी कई लाभ होते हैं। हमारे शरीरमें हरदम जो तरह तरहके विष और दूषित पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं, उपवासकालमें भी उनकी उत्पत्ति बराबर होती रहती है। यदि वे विष और दूषित पदार्थ बाहर न निकाले जायँ तो उनका दुष्परिणाम सारे शरीर पर और विशेषतः रोगग्रस्त अंगोंपर पड़ता है। एनिमासे उन विषोंके बाहर निकालनेमें भी बहुत सहायता मिलती है।

इस प्रकार अधिक जल पीनेसे तो शरीरका ऊपरी भाग स्वच्छ होता रहता है और एनिमा लेनेसे पेट, पेड़ू और आँतों आदिकी सफाई होती रहती है। अधिक जल पीने और एनिमा लेनेवाले उपवासकारियोंकी साँस बहुत साफ हो

जाती है और उनकी जीभ पर जमी हुई पपड़ी छूट जाता है और उनकी जीभकी रंगत ठीक वैसी ही गुलाबी हो जाती है, जैसी किसी छोटे नीरोग बालककी जीभकी होती है। साँसमें किसी प्रकारकी बदबू नहीं रह जाती और मुँहका स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

कुछ ज्ञातव्य बातें।

बहुत सम्भव है कि कुछ लोग उपवास करनेको बड़ा भारी युद्ध समझें और उसके लिए तरह तरहके अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेका प्रयत्न करें। ऐसे लोगोंसे हमारा निवेदन है कि उपवासके लिए पहलेसे कभी किसी प्रकारकी तैयारीकी आवश्यकता नहीं होती। न तो बहुत पहलेसे उपवासके उद्देश्यसे ही लम्बी चौड़ी कसरतें करनेकी आवश्यकता है और न खाने पीनेमें कोई बड़ा परहेज करनेकी ही। उपवास एक बहुत ही सीधी सादी और प्राकृतिक क्रिया है। जिस प्रकार प्यास लगने पर जल पीनेके लिए किसी प्रकारके सोच विचारकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार रोगग्रस्त होनेपर उपवास करनेके लिए भी किसी प्रकारका सोच विचार न होना चाहिए। उपवासके आरम्भमें केवल मनको शान्त और अविकल रखनेकी आवश्यकता होती है जहाँ मनकी उपवाससम्बन्धी उद्विग्नताका नाश हुआ वहाँ उपवासमें फिर और किसी प्रकारकी अड़चन या कठिनता नहीं रह जाती।

दूसरी बात ध्यान रखने योग्य यह है कि उपवास-कालमें किसी प्रकारकी ओषधि आदिका कदापि सेवन न करना चाहिए। उपवास एक प्राकृतिक क्रिया है और उसके साथ किसी अप्राकृतिक क्रियाका व्यवहार नहीं होना चाहिए। सन् १९०३ में लक्वेके एक रोगीने चालीस दिनोंका उपवास किया था। उपवासके अन्तमें उसे शरीरके एक ऐसे अंगमें कुछ पीड़ा जान पड़ी जिसमें उसे पहले कभी कोई पीड़ा नहीं हुई थी। मंगलके दिन उसने अपना उपवास समाप्त किया था और शुक्रवारके दिन उसकी मृत्यु हो गई। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उपवास छोड़नेके दूसरे ही दिन वह एक डाक्टरके पास चला गया था, जिसने उसे औषधके अतिरिक्त कुछ दूध और फलोंका रस भी दिया था और उसकी

मृत्यु इसी कारणसे हुई थी। उपवास करनेवालोंको इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उपवास-कालमें और उसके उपरान्त शरीरकी हालत बहुत ही नाजुक हो जाती है और उस दशामें औषधो आदिका शरीर पर बहुत ही भयङ्कर परिणाम होता है।

जो लोग अपने रोगोंकी चिकित्सा औषध आदिसे करते हैं, बहुधा औषध छोड़ देने पर उनके रोग फिरसे उन्हें कष्ट देने लगते हैं। पर उपवासकी सहायतासे नीरोग हो जाने पर रोगके फिरसे उमड़ आनेकी कभी कोई सम्भावना नहीं रहती। हाँ, उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों बाद यदि वह फिर औषधोंका सेवन आरम्भ कर दे तो अवश्य ही वह फिरसे रोगी हो सकता है।

कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि हम उपवास न करके केवल अपना भोजन घटा दे तो क्या उससे हमें लाभ न होगा ? इसका उत्तर यही है कि बहुत ही छोटे और साधारण रोगोंमें तो थोड़े भोजनसे अवश्य लाभ होता है, पर तीव्र और भयकर रोगोंके समय उससे कोई लाभ नहीं होता। बात यह है कि रोगी होनेपर हम जो कुछ खाते हैं उससे हमारे शरीरकी अपेक्षा, रोगका ही अधिक पोषण होता है। भोजन करके रोगको पालनेकी अपेक्षा भोजन छोड़कर उसे दूर कर देना ही अधिक बुद्धिमत्ता है। बहुतसे लोगोंने बहुत दिनों तक थोड़ा भोजन करके यही सिद्धान्त निकाला है कि उसका कोई परिणाम नहीं होता। दूसरी बात यह है कि उपवास करनेकी अपेक्षा थोड़ा भोजन करके रहना बहुत कठिन और कष्टप्रद है। उपवासमें तो केवल पहले दो तीन दिनोंतक ही कष्ट होता है और इसके बाद जब भूख मारी जाती है तब मनुष्य बड़े सुख-पूर्वक रहता है। पर थोड़ा भोजन करनेवालोंका कष्ट सदा बना रहता है। थोड़ा भोजन करनेसे भूख बढ़ती है और तब मनुष्यको विवश होकर अधिक भोजन करना ही पड़ता है। अप्टन सिंक्लेअरने एक बार केवल थोड़ेसे फल खाकर ही कुछ दिनों तक रहना निश्चय किया था। पर उस कालमें उन्हे उतनी अधिक दुर्बलता जान पड़ने लगी, जितनी उपवास-कालमें कभी नहीं जान पड़ती थी। इसलिए थोड़ा भोजन करके रहना कष्टदायक भी है और व्यर्थ भी। जो लोग एकदम उपवास न कर सकते हो वे पहले महीनेमें एक या दो दिनका ही उपवास करें। और इसी प्रकार उपवासका अभ्यास बढ़ाते जायँ तो अवश्य ही कुछ फायदेमें रह सकते हैं।

यह भी प्रश्न हो सकता है कि मनुष्यको उपवासकालमें अपना नियमित काम धन्धा करना चाहिए या नहीं। जिस प्रकार और बातोंमें कुछ शर्तें होती हैं उसी प्रकार इसमें भी कुछ खास शर्तें हैं। जिस मनुष्यकी जीवन-शक्ति बहुत ही घट गई हो वह यदि अधिक समयतक या कठिन और भारी काम करेगा तो अवश्य ही उसके शरीर पर उसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। तथापि ऐसे मनुष्यको कुछ टहलना फिरना या थोड़ा व्यायाम अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य बिछौनेसे परसे भी न उठ सकता हो वह भी बिछौने पर पड़ा ही अपने शरीरको इधर उधर हिला डुला सकता और इस प्रकार व्यायामसे होनेवाला थोड़ाबहुत लाभ उठा सकता है; पर जिस मनुष्यके शरीरमें थोड़ी बहुत शक्ति हो उसके लिए यथासाध्य अपने काम काममें लगा रहना ही अधिक उत्तम है। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि प्रत्येक दशामें मनकी स्थितिका शरीर पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस मनुष्यका मन काममें लगा रहेगा उसका शरीर बहुधा ठीक दशामें ही रहेगा। मनको इधर उधर भटकनेसे बचाने और कृत्रिम भूखके फेरमें न पड़नेके वास्ते काम धन्धेसे बहुत अच्छी सहायता मिलती है। खाली बैठे रहनेवाले लोग कृत्रिम भूखके फन्देमें फँसकर अपना उपवास छोड़ भी सकते हैं। बहुत ही प्रबल इच्छा शक्तिवाले लोगोंके लिए भी काम धन्धेमें लगे रहना बहुत ही आवश्यक और लाभदायक है। उपवासकालमें जहाँतक हो सके हाथों पैरों और मनको किसी न किसी काममें लगाये रखना चाहिए। इस अवसरपर यह बतला देना भी आवश्यक है कि गरमीके दिनोंमें उपवास करना बहुत कठिन होता है। उस समय मनुष्य बहुत ही निर्बल हो जाता है। जाड़ेमें उपवास तो अवश्य अच्छी तरह हो सकता है, पर उन दिनों कठिनता यह होती है कि मनुष्यको भूख अधिक लगने लगती है। पर यदि आरोग्यपर पड़नेवाले प्रभावके विचारसे देखा जाय तो जाड़ेके दिन ही अधिक उत्तम ठहरते हैं, क्योंकि अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गरमीमें तीन दिनोंतक उपवास करनेसे शरीरको जितना लाभ पहुँचता है, जाड़ेमें उतना ही लाभ केवल दो दिनोंमें होता है।

बड़ा और छोटा उपवास।

उपवास दो प्रकारके होते हैं। एक उपवास तो बहुत दिनोंका और दूसरा उपवास थोड़े दिनोका होता है। जो लोग बहुत दिनोंके उपवासको उत्तम बतलाते हैं वे भी उसकी अवधि निश्चित नहीं करते,—वे यह नहीं बतलाते कि अधिकसे अधिक कितने दिनों तक उपवास किया जा सकता है। उनका यह कथन है कि उपवासकी अवधि स्वयं प्रकृति निश्चित करती है। हमारी प्रकृति हमें यह बतला देती है कि हम एक सप्ताह तक निराहार रहें या एक मास तक। उनका यह भी मत है कि जबतक प्राकृतिक और वास्तविक भूख न लगे तबतक भोजन न करना चाहिए। भोजनकी वास्तविक रुचि या असली भूखकी निशानी साधारण और अभ्यास-जन्य रुचिसे कुछ भिन्न प्रकारकी होती है और जिस प्रकार सूर्य्यके प्रकाशके सामने और सब प्रकारके प्रकाश एकदम तुच्छ जान पड़ते हैं उसी प्रकार वास्तविक क्षुधाके सामने कृत्रिम या और किसी प्रकारकी क्षुधा बिलकुल ही तुच्छ बोध होने लगती है। उपवास करनेवालेको वास्तविक भूख और खानेकी इच्छा-मात्रका भेद तुरन्त मालूम हो जाता है। इस सिद्धान्तकी सत्यताके प्रमाणस्वरूप वे लोग उपस्थित किये जा सकते हैं जिन्होंने अस्सी और नब्बे दिनोंतकके उपवास किये हैं।

साधारण रोगोके समय यही बात ठीक जान पड़ती है कि जबतक रोगका जोर बिलकुल नष्ट न हो जाय और वास्तविक भूख लगे तबतक उपवास बराबर जारी रखना चाहिए। जिन लोगोंकी जीवन-शक्ति बहुत ही घट गई हो अथवा जो अपनी मानसिक या शारीरिक दुर्बलताके कारण अधिक दिनोंतक उपवास न कर सकते हों वे बड़े बड़े उपवास न करके छोटे छोटे उपवासोंसे ही बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हाँ, इसमे सन्देह नहीं कि छोटे उपवास करके बिलकुल नीरोग और स्वस्थ होनेमें बहुत समय लगता है। इसके अतिरिक्त उसमें अधिक समयतक विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता होती है। बड़े और छोटे उपवासके गुण और लाभ अपटन सिंक्लेअरने बड़ी ही उत्तमतासे बतलाये हैं; इस अवसर पर उन्हींका साराश दे देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। आप कहते हैं:—

" बहुधा लोग प्रश्न किया करते हैं कि कितने दिनोंतक चाहिए और यह किस प्रकार मालूम हो सकता है कि अ[illegible]

समय आ गया । मैं एक उपवास भी पूरा नहीं कर सका । मैंने दो बार बारह बारह दिनोंके उपवास किये हैं । दोनों बार मुझे उपवास छोड़ना पड़ा था इसका कारण यह था कि मैं बारह दिनोंमें ही बहुत दुर्बल हो गया था और मेरी बहुत इच्छा होती थी कि मेरा शरीर बहुत जल्दी फिरसे पहलेकी भाँति सबल हो जाय । यद्यपि इन बारह दिनोंतक मुझे वास्तविक भूख नहीं लगी थी, तो भी कई डाक्टरोंने मुझसे कहा था कि इन बारह दिनोंके उपवाससे ही तुम्हें बहुत कुछ लाभ पहुँच चुका है । और बात भी वास्तवमें कुछ ऐसी ही थी । मेरी समझमें पाचन शक्तिके मन्द पड़ने, आँतोंमें मल जमा होने, सिरमें दरद रहने, कब्जियत होने अथवा इसी प्रकारकी और दूसरी साधारण और छोटी मोटी शिकायतोंके लिए दस बारह दिनोंका उपवास बहुत ठीक होता है । पर जिन लोगोंको नासूर, गरमी, बवासीर, गठिया आदि भारी और भयंकर रोग हों, उन्हें अधिक दिनोंतक उपवास करना चाहिए ।

" यदि कोई मनुष्य एक बार उपवास आरम्भ करे और उपवास-कालमें उसे किसी प्रकारकी कठिनता या कष्ट बोध न हो तो उसे यथा साध्य कुछ अधिक समय तक उपवास अवश्य जारी रखना चाहिए । लोगोंको केवल अपनी सामर्थ्य दिखलाने, अपना कुतूहल शान्त करने या दिल्लगी देखनेके लिए कभी बड़ा उपवास न करना चाहिए । बार बार छोटे या बड़े उपवास करना भी ठीक नहीं । यदि किसीको कई बार बराबर उपवास करनेकी आवश्यकता जान पड़े तो उसे समझ लेना चाहिए कि किसी बहुत बुरी आदत या क्रियाके कारण उसका शरीर-सगठन बिलकुल बिगड़ गया है । ऐसी दशामें उसे सब प्रकारके अनुचित कार्यों और अभ्यासोंको सदाके लिए छोड़कर तब उपवास करना चाहिए । जो लोग दुबले पतले हों उन्हें अधिक दिनों तक कदापि उपवास न करना चाहिए । अधिक दिनों तक उपवास करनेकी शक्तिका आधार मनुष्यके शरीरकी मोटाई है । जो मनुष्य जितना ही अधिक मोटा होगा और जिसके शरीरमें जितना ही अधिक फालतू द्रव्य सगृहीत होगा वह उतना ही लंबा उपवास कर सकेगा । जब तक मनुष्यको स्वय यह निश्चय न हो जाय कि मुझे केवल बड़े उपवाससे ही लाभ होगा, तब तक उसे कभी अधिक दिनों तक उपावस न करना चाहिए ।

जिसे इस विषयमें तनिक भी शङ्का हो उसे सदा थोड़े दिनोंका उपवास न करना ही उचित है। यदि थोड़े दिनोंके उपवासका अनुभव प्राप्त करनेके उपरान्त भविष्यमें उसे किसी प्रकारका भय या सकट न दिखाई पड़े तो वह उसी उपवासको कुछ अधिक दिनों तक जारी रख सकता है, अथवा आवश्यकता पड़ने पर एक बार उपवास छोड़कर दूसरी बार अधिक दिनोंका उपवास कर सकता है।"

छोटे बच्चोंके लिए उपवास।

छोटे बच्चोको उपवाससे इतने अधिक लाभ होते हैं जितने वयस्क पुरुषोंको नहीं होते। दुधमुहे और पालनेमें झूलनेवाले बच्चोंसे लेकर १४–१५ वर्ष तककी अवस्थाके बच्चोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक होता है। बालकोंको बहुधा छोटी मोटी बीमारियाँ हो जाया करती हैं। यदि माता–पितामें इतना साहस और विश्वास हो कि बालकको किसी प्रकारका छोटा मोटा रोग होते ही वे उसका भोजन आदि बन्द कर दें तो वे रोग देखते ही देखते आश्चर्यजनक रूपसे दूर हो जाँयगे। जुकाम और खाँसीसे लेकर बड़े बड़े भयकर ज्वरोतक सब रोग इस प्रकार बहुत ही सहजमें दूर किये जा सकते हैं।

इस अवसर पर बड़े उपवासोंके सम्बन्धमें यह बतला देना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है कि **चार छह दिनसे अधिक लम्बा उपवास बिना किसी अच्छे चिकित्सक और विशेषत. उपवास चिकित्सककी सम्मति और देखरेखके कदापि न करना चाहिए।** क्योंकि कभी कभी उसके सम्बन्धके पूर्ण नियम आदि न जानने अथवा उनके पालन न करनेसे बहुत कुछ हानिकी सम्भावना है। जो लोग अधिक लम्बा उपवास करना चाहते हों उन्हें उचित है कि वे किसी उपवास-चिकित्सककी सम्मति लेकर अथवा अपने ही नगरके किसी योग्य चिकित्सककी देखरेखमें रहकर उपवास करें।

बालकोंका शारीरिक सगठन ही इतना उत्तम और आरोग्य-वर्द्धक होता है कि उन्हें कभी किसी प्रकारकी ओषधिकी आवश्यकता ही नहीं होती। ज्योंही किसी बालकको कोई रोग हो त्योंही उसका भोजन बन्द कर दो, उसे केवल स्वच्छ जल पीनेके लिए दो और उसे उसकी प्रकृति पर छोड़ दो और तब देखो कि

वह कितनी जल्दी नीरोग और स्वस्थ हो जाता है । इस सम्बन्धमें तनिक भी भय या चिन्ताका कभी कोई कारण नहीं है । क्योंकि इससे बढ़कर आश्चर्य्य-जनक और रामवाण चिकित्सा हो ही नहीं सकती । जो माता पिता एक दो चार भी इस चिकित्साकी परीक्षा करेंगे वे आगे चलकर अपनी पहली मूर्खता और दूसरोंके व्यर्थ भय आदि पर हँसने लगेंगे ।

पर यदि किसी बालकके रोगी होने पर महीनों तरह तरहकी ओषधियाँ देकर उसका स्वास्थ्य बिलकुल बिगाड़ दिया जायगा और उसे मृत्यु-मुख तक पहुँचा दिया जायगा, तो उसको बचा लेनेकी शक्ति उपवासमें न दिखलाई पड़ेगा । उस दशामें अपनी मूर्खताका दोष उपवासके मत्थे न मढ़ना चाहिए । हाँ, यदि दूषित उपायोंसे बालकका शरीर बिगाड़ा न गया हो, उसके शरीरमें तरह तरहके विष न भरे गये हो तो अवश्य ही उपवासका चमत्कार देखा जा सकता है । सबसे पहली बात तो यह है कि स्वयं बालकके शरीरमें कभी किसी प्रकारका रोग नहीं होता । या तो वह रोग माता पिताके कुपथ्य और दोषों आदिके कारण हो सकता है और या तरह तरहकी ओषधियों आदिकी सहायतासे उसमें आरोपित किया जाता है । जिस प्रकार किसी प्रतिष्ठित भले आदमीकी प्रवृत्ति चोर डाकू या खूनी बननेकी ओर नहीं हो सकती, उसी प्रकार किसी बालकके शरीरकी प्रवृत्ति रोगी होनेकी ओर नहीं हो सकती । बहुतसी अवस्थाओंमें तो यहाँ तक देखा गया है कि यदि बालक कोई रोग साथ लेकर उत्पन्न हो, तो आगे चलकर उसका बाल शरीर ही उस रोगको नष्ट कर देता है । पर दुर्भाग्यवश हम लोगोंको यह मिथ्या भ्रम हो जाता है कि बालकको सदा भोजनकी आवश्यकता बनी रहती है । रोगी होनेके समय उसे औषध अवश्य देनी चाहिए, यदि उसे नींद न आती हो तो थोड़ी अफीम या और कोई नशीली चीज खिला देना चाहिए, आदि आदि । और इसी भ्रमके कारण हम रोग जान बूझकर बालकोंके शरीरको रोगका घर बना देते हैं ।

प्रकृति हमे यह बात बतलाती है कि किसी बालकको जन्म लेनेके उपरान्त कमसे कम तीन दिन तक किसी प्रकारके भोजनकी आवश्यकता नहीं होती । साधारणतः प्रत्येक दाई और माता यह बात अच्छी तरह जानती है कि बालकको जन्म लेनेके तीसरे दिन दूध पिलाया जाता है । वह दूध भी बहुत ही

थोड़ी मात्रामें होता है। पर उसके बाद ही माता या दाई उसे थोड़ी थोड़ी देरके बाद जबरदस्ती अथवा जब जब वह रोता है तब तब उसे दूध पिलाती है। इस प्रकार बाल्यावस्थासे ही बालककी पाचन-क्रिया और शक्ति बिगाड़ी जाती है। धीरे धीरे बालक पर भूखका अधिकार बढ़ता जाता है। उसके पीछे एक ऐसी बुरी आदत लगा दी जाती है कि जो आजन्म उसका पीछा न छोड़नेके अतिरिक्त उसे तरह तरहके रोगोंका पात्र बना देती है। छोटे बालकोंको केवल दिनके समय और वह भी कमसे कम दो दो घंटोंका अन्तर देकर बहुत ही थोड़ी मात्रामें दूध पिलाना चाहिए और रातको कभी दूध न पिलाना चाहिए। जिस समय बालक रोता हो उस समय उसे दूध पिलानेके बदले एक चमचा पानी पिला देना चाहिए। अधिकांश अवसरों पर बालकका रोना उसी पानीसे ही शान्त होगा और वह तुरन्त सो जायगा। यह बात चाहे साधारणतः लोगोंके मनमें न बैठे, पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि अनुभव करके देखा जाय तो जान पड़ेगा कि इस प्रकार पाले हुए बालकोंमें से ७५ प्रति सैकड़े सदा नीरोग और हृष्ट पुष्ट बने रहेंगे। प्रत्येक रोग भूख और जीभको काबूमें न रखनेके कारण ही होता है। जिस बालकको आरम्भसे ही भूख और जीभको काबूमें रखनेकी शिक्षा दी जायगी वह बयस्क होनेपर कभी रोगी न होगा।

पर अभाग्यवश आज कलके जमानेमें बहुत ही थोड़े बालक इस प्रकार पाले जाते हैं। प्रायः उन्हें बार बार और इतना अधिक दूध पिलाया जाता है कि पाचन-क्रियाके प्राकृतिक नियमों और प्रेरणाओं आदिका बुरी तरह नाश हो जाता है। यहाँ तक कि जब बालक उनकी समझसे कम दूध पीता है तब वह रोगी माना जाता है और उसकी चिकित्साकी चिन्ता होने लगती है; पर जो लोग ध्यान और विचार-पूर्वक उपवाससे होनेवाले लाभोंकी जाँच करते हैं उन्हें तुरन्त यह मालूम हो जाता है कि बालकोंके प्रायः सभी रोगोंका सम्बन्ध उनके अनियमित और अधिक भोजनसे ही होता है। वास्तवमें स्वयं शरीर कभी रोगी नहीं होता; प्रकृतिके नियमोंके उल्लंघन, कुपथ्य और परिस्थिति आदिके विरोधके कारण उसे रोगी होनेके लिए विवश होना पड़ता है। प्रत्येक मातापिताका यह प्रधान कर्तव्य होना चाहिए कि वह अपने बालकके स्वास्थ्यकी; उसे इन सब बातोंसे बचाकर, रक्षा करे।

उपवास किसे न करना चाहिए।

अनुभव और परीक्षासे पता लगा है कि कई रोग ऐसे भी हैं जिनमें उपवाससे कोई लाभ नहीं होता। उनमेंसे एक क्षय-रोग भी है। इस रोगमें रोगीकी जीवनशक्ति इतनी अधिक नष्ट हो जाती है कि वह अधिक दिनोंतक उपवास कर ही नहीं सकता। ऐसे लोग यदि थोड़ा थोड़ा भोजन करें अथवा छोटे छोटे उपवास करें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है। थोड़े विचारसे ही इस सिद्धान्तकी उपयुक्तताका पता चल जाता है। बहुत ही थोड़ीसी बची हुई शक्तिवाले रोगीके लिए बड़ा उपवास करना कदापि युक्तिसंगत नहीं हो सकता, क्योंकि उपवासके आरम्भमें शक्तिका ह्रास होता है। यदि थोड़ीसी बची हुई शक्तिका इस प्रकार नाश कर दिया जायगा तो 'रोग रहे न रोगी' वाली कहावत ही चरितार्थ होगी। हाँ, यदि उसे पहले एक या दो दिनका उपवास कराया जायगा तो पाचनशक्ति और पक्वाशयको कुछ आराम मिलेगा और उनसे रोगको पचाने और विषोंको बाहर निकालनेमें कुछ सहायता मिलेगी। इसके उपरान्त उसे थोड़ी मात्रामें ऐसा भोजन देना उचित होगा जो शीघ्र ही पच सके और तदुपरान्त एक दूसरा छोटा उपवास कराना ठीक होगा। इस क्रियासे धीरे धीरे उसका शरीर नीरोग होने लगेगा और उसका बल भी न घटने पावेगा।

यदि क्षयके रोगीको आरम्भमें ही उपवास कराया जाय तो उससे बहुत लाभ हो सकता है। डा० मैकफेडनने अपने चिकित्सालयमें कई ऐसे रोगियोंको जिन्हें क्षयरोग आरम्भ हुआ था, उपवास कराके चंगा किया है। कुछ अवस्थाओंमें यह भी देखा गया है कि उपवास-वाले रोगीके शरीरका जो वजन घटा था, वह नीरोग होने पर फिर न बढ़ा, ज्योंका त्यों बना रहा। बहुत सम्भव है कि ऐसे रोगी उपवासके उपरान्त भोजन आदिमें कुपथ्य करते हों और उसीके फलस्वरूप उनका वजन न बढ़ता हो।

यह बात आवश्यक नहीं है कि संसारके प्रत्येक रोगमें उपवास ही किया जाय। जो मनुष्य आवश्यकतासे अधिक खाता हो, यह समझ कर कि अधिक भोजनसे हमारे शरीरका बल बढ़ेगा, थोड़ी थोड़ी देरके बाद और बहुतसा खाता हो तो अवश्य ही यह मानना पड़ेगा कि वह बहुत अधिक भोजन करनेके कारण

ही रोगी हुआ है । ऐसे मनुष्यके रक्तमें बहुतसा विष उत्पन्न हो जाता है जिसका परिणाम उसके शरीरके लिए बहुत ही हानिकारक होता है । प्राकृतिक नियम यह है कि यदि ऐसा मनुष्य उपवास करे और कुछ समयके लिए भोजन छोड़ दे तो अवश्य ही उसके रक्तमेंका विष नष्ट हो जायगा और उसके शरीरका बल बढ़ेगा । पर जो मनुष्य बहुत दिनोंसे आवश्यकतासे कम भोजन करता आया हो और इस प्रकार बहुत ही दुर्बल हो गया हो, उसे उपवास करानेके लिए बहुत ही साव धानीकी आवश्यकता होती है । एक दो अथवा अधिकसे अधिक तीन दिनोंके उपवाससे ही ऐसे मनुष्यकी पाचनशक्ति सुधर कर अपनी साधारण अवस्थातक पहुँच जायगी और वह यथेष्ट भोजन पचानेके योग्य हो जायगा । ऐसे लोगोंको तीन दिनसे अधिक निराहार रहनेकी आवश्यकता न होगी । उपवासकी समाप्ति पर ऐसे लोगोंको थोड़ासा हलका और अधिक पोषक भोजन देना चाहिए, जो जलदी पच जाय और जिससे उसके शरीरका बल अधिक बढ़े और उसका अधिक] पोषण हो । साधारणतः ऐसा उत्तम भोजन दूध ही माना जाता है और उससे बहुधा यथेष्ट लाभ पहुँचता है । बहुतसे रोगियोंकी शक्ति इतनी नष्ट हो जाती है कि वे दूध भी नहीं पचा सकते । पर ऐसे लोगोंको भी कभी निराश न होना चाहिए और बहुत ही थोड़ी मात्रामें दूध या फलों आदिका रस पीते रहना चाहिए ।

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि जिन लोगोंकी जीवनशक्ति बहुत अधिक नष्ट हो गई हो उन्हें कभी अधिक दिनोंतक उपवास नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार जिन लोगोंका रोग औषध खाते खाते बहुत अधिक बढ़ गया हो उन्हें भी व्यर्थ उपवासको बदनाम करनेके लिए भोजन न छोड़ना चाहिए । गर्भवती स्त्रियोंके लिए भी उपवास करना युक्तिसंगत नहीं है । इसके अतिरिक्त केवल मनोविनोद या दिखानेके लिए भी कभी उपवास न करना चाहिए । भारी शोक या चिन्ताके समय भी उपवास करना हानिकारक होता है क्योंकि उपवास कालमें सदा प्रसन्नचित्त रहनेकी आवश्यकता होती है । जो लोग सब प्रकारसे नीरोग हों और जिनके शरीरमें किसी प्रकारकी बीमारी न हो उन्हें भी व्यर्थ उप वास न करना चाहिए क्योंकि उपवास केवल रोगको शरीरसे बाहर निकाल देने की एक सर्वोत्तम क्रिया है । स्वयं उपवाससे शारीरिक संगठन और बल वृद्धि

आदिमें कोई सहायता नहीं मिलती । हाँ, जो विष और विकार आदि शरीर सग ठन और बल-वृद्धि आदिमें बाधक होते हैं, उन विषों तथा विकारोंको उपवास अवश्य ही शरीरके बाहर निकाल देता है ।

जिस युवक अथवा युवतीकी पाचन-शक्ति ठीक हो, जिसे किसी प्रकारका रोग न हो, जिसका जिगर और मेफड़ा ठीक तरहसे काम करता हो, उसे उपवासकी कभी कोई आवश्यकता नहीं है । जिस मनुष्यका शरीर सब प्रकारसे नीरोग हो उसे केवल इसी बातकी आवश्यकता होती है कि वह पथ्यसे रहे, स्वच्छ वायुका सेवन करे और खूब कसरत करे । इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि एक मात्र उपवास ही सब रोगोंको नष्ट करनेका उपाय नहीं है बल्कि उसके लिए शारीरिक संयम, खुली हवा, सूर्यके प्रकाश, पूरी नींद और यथेष्ट शारीरिक परिश्रमकी भी बहुत कुछ आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त सदा नीरोग रहनेके लिए शुद्ध और निर्दोष मनोवृत्ति, दृढ निश्चय और प्रफुल्लता आदिकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है ।

उपवाससम्बन्धी कुछ परीक्षायें ।

जो लोग इस बातकी परीक्षा करना चाहें कि उपवाससे रोगका नाश होता है या नहीं, उनके लिए सबसे अच्छा और सहज उपाय यह है कि वे पहले एक या दो दिन तक उपवास करें । उस एक या दो दिनमें ही उन्हें बहुत कुछ लाभ मालूम होने लगेगा, और उस दशामें यदि अच्छी तरह उनको सन्तोष हो जाय तो वे और अधिक दिनोंतक उपवास कर सकते हैं । अथवा यदि उनकी हिम्मत न पड़ती हो तो वे पहले बहुत छोटे छोटे उपवास करें और ज्यों ज्यों उन्हें उसके लाभ मालूम होते जायँ त्यों त्यों वे अधिक दिनोंके उपवास करते जायँ । जिन लोगोंकी देखरेखके लिए योग्य उपवासचिकित्सक न मिल सकते हों और जिन्हें स्वयं भी उपवाससम्बन्धी विशेष जानकारी न हो, उनके लिए इस उपायका अवलम्बन बहुत ही उत्तम और उपयुक्त है ।

जिस उपवासकी समाप्ति पर जीभका स्वाद न सुधरे, जीभ पर जमी हुई पपड़ी आपसे आप न उतर जाय तथा इसी प्रकारके और दूसरे ऐसे चिह्न न

प्रकट हो जिनसे विषोंके बाहर निकल जानेका पूरा पूरा प्रमाण मिलता है, उस उपवासको अपूर्ण और अधूरा समझना चाहिए । साधारणत आठ दस दिनके उपवासको योग्य उपवास चिकित्सक अधूरा ही समझते हैं । क्योंकि उन आठ दस दिनोंमें भी वास्तविक उपवासके दिन चार या पाँच ही होते हैं, और ऐसे छोटे उपवास बिना किसी प्रकारकी कठिनता या कष्टके ही किये जा सकते हैं। ऐसे अधूरे उपवासोंसे शरीरकी कभी कोई शक्ति भी नहीं घटती । शक्तिके सम्बन्धमें सबसे पहले यह बात समझ लेनी चाहिए कि शक्ति न तो भोजन करनेके उपरान्त तुरन्त ही उत्पन्न होती है और न दुर्बलता सदा थोड़ा खानेसे ही होती है, दुर्बलताका मुख्य कारण वे विष होते हैं जो हमारे रक्तमें मिल जाते हैं।

इस अवसर पर हम एक ऐसा उपाय बतलाते हैं जिससे उपवासकी परीक्षा भी हो सकती है और आरम्भ भी । जो लोग उपवास पर विश्वास न करते हो अथवा विश्वास करने पर भी जिनमें उससे लाभ उठानेका साहस न हो उनके लिए यह उपाय बहुत ही अच्छा है । ऐसे मनुष्योंको उचित है कि वे पहले दिन उपवास करें और दो दिनतक नियमित भोजन करें और तब दो दिनों तक उप वास करके चार दिन नियमित भोजन करें, तदनन्तर वे चार दिन बिना भोजनके रहकर आठ दिन भोजन करें और यह क्रम बराबर जारी रक्खे । इसमे सिद्धान्त यही होना चाहिए कि एक बार वे जितने दिनोंका उपवास करें, उपवासके उपरान्त उससे दूने दिनोंतक वे भोजन करें । इस प्रकार उन्हें उपवासके लाभ भी मालूम हो जाँयगे और वे बिना अधिक कष्ट सहे उपवासका अभ्यास भी कर लेंगे । इसके सिवा उन्हें उपवास-कालमें प्रकट होनेवाले अनेक चिह्नों तथा उसके सम्बन्धमें दूसरी बहुतसी आवश्यक और जानने योग्य बातोंका पता भी लग जायगा और वे उस सम्बन्धमे सब प्रकारका अनुभव भी प्राप्त कर लेंगे । इस अवसर पर हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि उपवास-कालमे कभी स्वच्छ जलके अतिरिक्त और किसी चीजका बहुत छोटा टुकड़ा या एक दाना भी न खाना चाहिए, नहीं तो भूख उभड़ आवेगी और तब विवश होकर उन्हें भोजन करना ही पड़ेगा । उस समय सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा ।

बहुत छोटा और अधूरा उपवास प्रत्येक दशामें और प्रत्येक अवसर पर किया जा सकता है । एक नीरोग मनुष्य जब चाहे तब एक या दो बारका भोजन

छोड़कर अच्छा लाभ उठा सकता है। उपवासके लाभोंका बहुत कुछ पता इसीसे लग जाता है। जो मनुष्य यह समझता हो कि मुझे उपवास करनेकी आवश्यकता है, पर उसे लम्बे या बड़े उपवासोंमें भय लगता हो वह पहले एक बारका भोजन छोड़े। तदुपरान्त जब उसे बहुत अधिक भूख लगे तब वह एक या दो गिलास साफ गरम पानी पी ले। अथवा एक गिलास ठंढा पानी बहुत ही धीरे धीरे, मानों चूस चूस कर पीए। यदि उस समय मुँहका स्वाद कुछ बिगड़ जाय और पानी अच्छा न लगे तो उसमें नीबू या किसी और फलका बहुत थोड़ा सा रस डाल ले। जिस समय मुँहका स्वाद बदला हो अथवा भूख न मालूम हो उस समय कदापि भोजन न करना चाहिए। भूखकी सबसे अच्छी परीक्षा यही है कि मुँहका स्वाद ठीक हो और जो कुछ खाया जाय वह बहुत स्वादिष्ट मालूम हो। भोजन उसी समय अच्छी तरह पचता है जब कि वह सादेसे सादा होने पर भी बहुत स्वादिष्ट जान पड़े। मुँहके अन्दर कुछ विशेष भाग ऐसे हैं जिन्हें अँगरेजीमें yast bueds कहते हैं। भोजनका स्वाद उसी समय मिलता है जब कि भोजनका उन भागोंमें समावेश होता है। और उनमें भोजनका समावेश उसी समय होता है जब कि मनुष्यका पक्वाशय खाली और भोजन ग्रहण करनेके लिए तैयार हो। जिस समय पाचनशक्तिके लिए पहलेसे ही बहुत सा काम तैयार हो और उसे नये भोजनको पचानेकी आवश्यकता न हो उस समय मनुष्यको भोजनका वास्तविक स्वाद कभी नहीं मिल सकता। स्वाद हमें यह बतलाता है कि इस समय हमें भोजनकी आवश्यकता है या नहीं।

जो लोग उपवास करते हों उनके लिए बीचबीचमें यह जाननेकी भी बड़ी आवश्यकता होती है कि अभी उपवास पूरा हुआ है या नहीं। यद्यपि उपवासकी समाप्ति पर मनुष्यको वास्तविक भूख लगती है और उसे भोजनकी बहुत अधिक आवश्यकता होती है, तथापि इसके अतिरिक्त और भी ऐसे उपाय हैं जिनसे उपवासकी समाप्तिका पता चल जाता है। कभी कभी उपवासकी समाप्तिसे पहले ही किसी विशेष कारणवश कृत्रिम भूख लगनेकी भी सम्भावना होती है और उस दशामें अनेक दूसरे चिह्नोंसे इस बातका पता लगता है कि अभी उपवास समाप्त हुआ या नहीं। उपवाससे शरीरको पूरा पूरा लाभ पहुँचानेका सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उपवासकालमें जीभ पर जो परती जमती है वह स्वयं ही धीरे धीरे साफ हो जाय और जीभका वास्तविक गुलाबी रंग भीतरसे निकल आवे। इसके

अतिरिक्त उस समय मुँहका स्वाद भी बहुत अच्छा और मीठा हो जाता है और साँस बहुत साफ हो जाती है। पहले जो असाधारण और बहुत विलक्षण भूख लगी रहती था वह मिट जाती है और उसके स्थान पर हल्की और स्वाभाविक भूख उत्पन्न होती है। उस समय बहुत हलके और स्वास्थ्यप्रद भोजनकी ओर ही रुचि होती है, सभी अच्छी बुरी चीजों पर मन नहीं चलता।

कुछ अवस्थायें ऐसी भी होती हैं जिनमें रोगीको बीचमें ही उपवास छोड देना चाहिए। जिस समय रोगीमें चलने फिरने, यहाँ तक कि उठने बैठनेका भी शक्ति न रह जाय और जब कि वह इतना निवल हो जाय कि सदा बिछौने पर ही पडा रहे तो उसे अवश्य अपना उपवास छोडकर भोजन आरम्भ कर देना चाहिए। उस समय उसे बहुत थोडा दूध या फलों आदिका रस पीना चाहिए जिसमें उसका शरीर धीरे धीरे हरा होने लगे। पर इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास कालमें बहुधा कृत्रिम दुर्बलता भी हो आती है। यदि प्रात काल सोकर उठनेके समय दुर्बलता जान पडे और सिरमें चक्कर आव अथवा उठा न जाय, तो उस समय थोडा साहस करके उठ बैठना चाहिए और धारे धीरे या लकडा आदिके सहारे इधर उधर टहलना चाहिए। इस प्रकार थोडी ही देरके बाद शरीरकी सब शक्तियाँ चैतन्य और जाग्रत हो जायँगी और शरीरमें साधारण शक्ति आ जायगी। बहुतसे ऐसे रोगी देखे गये हैं जिन्हें पहले तो बहुत अधिक दुर्बलता जान पडती थी, पर जहाँ उन्होंने थोडीसी गहरी और लम्बी सास लीं और दो चार बार उठने बैठनेका प्रयत्न किया तहाँ उनमें इतना शक्ति आगई कि वे बिना थके हुए मीलोंका चक्कर लगा आये। ऐसे लोगोंको कभी उपवास छोडनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, जो लोग वास्तवमें एकदम निर्बल हो गये हो और सब कुछ प्रयत्न करने पर भी उठने बैठनेतकमें असमर्थ हो, उन्हें अवश्य उपवास छोड देना चाहिए। बात केवल यही है कि उपवासकालमे शरीरकी शक्तियोंको जाग्रत करने और काम करनके योग्य बनानेके लिए थोड़ेसे परिश्रमकी आवश्यकता होती है। शरीरमेंसे आलस्य निकलते ही मनुष्य ज्योंका त्यो हो जाता है और अपने सब काम बडे आनन्दसे पहलेकी तरह करने लगता है। वास्तविक दुर्बलता बहुधा उन्हीं लोगोंको होती है जो आवश्यकतासे अधिक उपवास कर जाते हैं या उपवास-कालमे यथेष्ट व्यायाम नहीं करते।

उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए ?

उपवास करनेवालोंके लिए यह जानना बहुत अधिक आवश्यक है कि उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए। यदि उपवास छोड़नेके समय किसी प्रकारका असावधानता या कुपथ्य हो जाय तो उपवासका सारा लाभ नष्ट हो जाता है और कभी कभी उलटे हानि भी सहनी पड़ती है। यदि नियमोंका ठीक ठीक पालन किया जाय तो चिन्ताका कोई बात नहीं रह जाती और शरार बिलकुल नीरोग और पुष्ट हो जाता है। उपवास छोड़नेके उपरान्त कुछ अधिक खा लेनेसे मृत्युतकका सम्भावना होता है। इस लिए बहुत तेज भूखके फेरमें पड़कर एक ही बारमें बहुत सा भोजन न कर लेना चाहिए। उपवास छोड़नेके उपरान्त खानेकी इच्छा इतनी अधिक होती है कि उस समय जो कुछ मिले वही खा जानेका मन करता है। इसका यह कारण नहीं है कि उस समय उपवास करनेके उपरान्त भूखका जोर ही इतना अधिक बढ़ जाता है बल्कि उस समय मनकी अवस्था ही ऐसी हो जाता है। इस सम्बन्धमे एक अच्छे विद्वान्‌का मत है—

" उपवास छोड़नेके समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए। उपवासकी समाप्तिके उपरान्त शरीरकी रचना मानो पुन नये सिरसे होती है और उस समय इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि हम क्या खायँ, किस प्रकार खायँ और कितना खायँ। उपवास छोड़नेके उपरान्त जब हम भोजन आरम्भ करते हैं, उस समय हमारी इच्छा बहुत अधिक खानेकी होती है। यदि हम उस समय अधिक खाना आरम्भ कर दें तो उपवास करनेसे हमारे शरीरको जितने लाभ हुए होंगे वे सब नष्ट हो जायँगे। इसलिए उपवास छोड़नेके समय किसी अच्छे उपवासचिकित्सकका सम्मति लेनी चाहिए, और जिस प्रकार वह बतलाए उस प्रकार हमें भोजन करना चाहिए और बराबर कसरत जारी रखनी चाहिए।"

अधिक दिनोंका उपवास करनेवाले लोगोंको उपवास छोड़नेके समय भोजन पर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यता होती है। हाँ, एक दो या चार दिनोंका उपवास करनेवालोंको उसके लिए उतनी चिन्ता न करनी चाहिए। पर जो लोग कई सप्ताहों या मासों तक बिना भोजनके रह चुके हों उन्हें उस समय तक भोजनका विशेष ध्यान रखना चाहिए, जब तक उसके भोजन पचानेवाले अवयव भोजनको

अच्छी तरह पचानेमें समर्थ न हो जायँ। उपवास छोड़नेके उपरान्त पहले या नित्यके अनुसार भोजन करनेका प्रयत्न कदापि न करना चाहिए और न भोजन करनेमें किसी प्रकारका उतावलापन करना चाहिए। भोजन बहुत ही थोड़ी मात्रामें आरम्भ करके बहुत धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए।

बहुत दिनोंतक बिना भोजनके रहनेके कारण रोगीके शरीरकी हालत बहुत नाजुक हो जाती है और उपवास छोड़ने पर, बल्कि बहुधा बीचमें भी उसे इतनी भूख लगती है कि यदि वह किसी अच्छे डाक्टरकी देखरेखमें हो तो कभी कभी लुक-छिपकर भी कुछ खानेका प्रयत्न करता है। अतः डाक्टरोंकी देखरेखमें उपवास करनेवालोंको यह बात दृढ़तापूर्वक अपने मनमें अंकित कर लेनी चाहिए कि बिना डाक्टरकी सम्मतिके अथवा उसे जतलाये हुए कभी कोई काम न करना चाहिए; विशेषतः कभी कोई चीज खानी न चाहिए। उस समय भूख ऐसी लगती है कि जो चीज और जितनी मात्रामें मिले वह सब खाई जा सकती है। उस समय लोग कभी कभी ऐसी चीजें भी खा लेते हैं, जिनका शरीर पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। उस दशामें डाक्टरको भी भारी विपत्तिका सामना करना पड़ता है और रोगीको भी बहुत कष्ट सहना पड़ता है। यदि इस बातका पता लग जाय कि उपवास छोड़नेके उपरान्त किसीने कोई अधिक अथवा हानिकारक पदार्थ खा लिया है तो तुरन्त कै कराके अथवा एनिमाकी सहायतासे उसके पेटमेंसे वह पदार्थ निकलवा देना चाहिए। यदि उपवास करनेवालेसे न रहा जाय तो उसे कमसे कम डाक्टरकी सम्मतिके अनुसार अवश्य चलना चाहिए; जिससे वह बहुतसी भूलों और दोषोंसे बचा रहे।

जिन लोगोंका शरीर दुर्बल हो उनके लिए और भी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। उनमेंसे कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें वास्तवमें दो तीन सप्ताह तक उपवास करनेकी आवश्यकता होती है। पर एक ही सप्ताह तक उपवास करनेके उपरान्त वे इतने दुर्बल हो जाते हैं, कि उन्हें उपवास छोड़ देनेकी आवश्यकता होती है। यदि पहली बार ही रोगी अधिक दिनोंका उपवास न कर सके तो उसके लिए सुगम उपाय यह है कि जिस रोगके लिए उपवास कराया जाता हो वह रोग जब तक अच्छा न हो जाय तब तक वह रोगी थोड़े थोड़े दिनोंका

उपवास करता रहे और ज्यों ज्यों उसकी शक्ति बढ़ती जाय त्यों त्यों वह उपवासकी मुद्दत भी बढ़ाता जाय। जो लोग दुर्बल होते हैं वे आरम्भमें अधिक लंबे उपवास नहीं कर सकते, पर यदि वे धीरे धीरे अपने उपवासकी मुद्दत बढ़ाते जायँ तो आगे चल कर अधिक उपवास कर सकते हैं।

प्रत्येक उपवास करनेवालेको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि **छोटे या बड़े प्रत्येक उपवाससे होनेवाला लाभ उपवास छोड़नेके प्रकार पर ही अवलंबित रहता है।** जिस प्रकार कोई बहुत दुःखकी बात किसीको बहुत धीरे धीरे सुनाई जाती है उसी प्रकार उपवास भी बहुत धीरे धीरे छोड़ना चाहिए। उपवास छोड़नेके पहले अच्छे फलोंके रसके सिवा और कोई चीज नहीं लेनी चाहिए। अंगूर या सन्तरे आदिका रस सबसे अच्छा है। इनमेंसे किसी फलका रस एक छोटे से गिलासमें लेकर उसमें थोड़ी चीनी डाल देनी चाहिए और उसमेंसे बहुत ही धीरे धीरे एक एक घूँट करके और स्वाद ले ले कर गलेमें उतारना चाहिए। एक दममें बहुत सा रस गटर गटर करके पी जाना बहुत ही हानिकारक है। इस प्रकार दिनमें दो तीन बार रस पीना चाहिए। दूसरे दिन ताजा, बढ़िया और गरम दूध एक एक गिलास करके दिनमें तीन चार बार पीना चाहिए। दूध या रसको बराबर उस समय तक मुँहमें ही रखना चाहिए, जबतक उसमें किसी प्रकारका स्वाद रहे। तीसरे दिन दूधकी मात्रा कुछ बढ़ा देनी चाहिए और उसके साथ कुछ खट्टे (एसिडवाले) फल भी खाने चाहिए। चौथे दिन दूधकी मात्रा और फलोंकी संख्या कुछ बढ़ा देनी चाहिए। पाँचवें दिन सदाके नियमानुसार अपना साधारण पर सादा भोजन करना चाहिए, लेकिन वह भोजन नियमकी मात्रासे कम हो। जो लोग एक सप्ताह या इससे अधिक समय तक उपवास कर चुके हों उनके लिए इन नियमोंका पालन बहुत ही आवश्यक है।

इस अवसर पर यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि, उपवासकालमें शरीरके भीतर क्या क्या फेरफार होते हैं। शरीरमेंसे सदा कुछ ऐसे रस निकलते रहते हैं, जिनसे भोजन पचता है। उपवासकालमें इन रसोंका निकलना बन्द नहीं होता बल्कि बराबर जारी रहता है। पर स्वयं पचानेवाली शक्ति बहुत मन्द पड़

जाती है और यही कारण है कि उपवासकी समाप्ति पर उसके लिए एक दमसे भारी या अधिक भोजन पचा लेना असम्भव होता है। शरीरके भीतरी भागसे निकलनेवाले पाचक रसोंकी मात्रा चार पाँच दिनों बाद कुछ कम होने लगती है। इसलिए चार दिनोंतकका उपवास करनेवाले लोग उपवासके उपरान्त नियमानुसार भोजन कर सकते हैं; क्योंकि उन लोगोंको उस भोजनसे कोई हानि नहीं पहुँच सकती। यद्यपि कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो एक सप्ताह तक उपवास करनेके उपरान्त भी बिना किसी प्रकारकी जोखिम सहे नियमानुसार भोजन कर-लेते हैं, पर तो भी सर्व साधारणको इसके लिए बहुत ही सचेत रहना चाहिए। जिन लोगोंको उपवास छोड़नेके दो दिन बाद बहुत अधिक भूख लगनेके कारण बेचैनी हो उनकी बेचैनी थोड़ा दूध पीते ही दूर हो जायगी और शरीरको किसी प्रकारकी हानि भी न पहुँचेगी। उपवास छोड़नेके पाँच छः दिन बाद भी जब नियमित भोजन आरम्भ किया जाय तब कुछ दिनों तक इस बातका बहुत ध्यान रखना चाहिए कि भोजन बहुत ही हल्का और सदासे कम हो। जीभके स्वाद अथवा और किसी कारणसे कभी अधिक न खाना चाहिए। साधारणतः उपवासचिकित्सालयोंमें जब एक सप्ताह या इससे अधिक समयतक उपवास करनेवालेका उपवास छुड़ाया जाता है, तब पहले दो दिनों तक उसे केवल फलोंके रस ही देते हैं और तब उसके बाद तीसरे दिनसे दूध आरम्भ करते हैं। तीसरे दिन दो दो घंटे पर और चौथे दिन एक एक घंटे पर एक गिलास दूध दिया जाता है। पाँचवे और छठे दिन इसी प्रकार अन्तर कम किया जाता है और ज्यों ज्यों उपवास करनेवालेकी पाचनशक्ति बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसे अधिक दूध मिलता जाता है। दूधकी मात्रा इस प्रकार धीरे धीरे बढ़ानेसे तौलमें शरीर भी बहुत जल्दी जल्दी बढ़ने लगता है। कभी कभी तो वह एक ही दिनमें डेढ़ दो सेर तक बढ़ जाता है। बहुतसे उपवास करनेवाले एक ही सप्ताहमें तौलमें १२–१३ सेरतक बढ़ गये हैं।

उपवासके उपरान्त दूध पीनेसे अनेक लाभ होते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि दूध हलका और लघुपाक होता है और दूसरे, शरीरका बल बहुत बढ़ाता है। उसका तीसरा लाभ यह भी होता है कि भोजन करनेकी बहुत प्रबल इच्छा इससे बहुत कुछ दब जाती है। पर जो लोग किसी प्रकार

जितनी अधिक बढनी चाहिए थी उतनी उससे न बढी थी । लगातार कई सप्ताहों तक चावल और अडा खाते रहनेसे पैखाना बिल्कुल नहीं होता था ।

" मेरा अनुभव यह है कि उपवासके उपरान्त पक्वाशय बहुत ही दुर्बल जान पडता है और उस पर बहुत ही शीघ्र हानिकारक प्रभाव पडनेकी सम्भावना होती है । इसके अतिरिक्त उस समय आँतोंकी शक्ति भी बहुत कम होती जाती है । इसलिए उस अवसर पर ऐसा भोजन पसन्द करना चाहिए, जो बहुत जल्दी हजम हो सके । साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि जब तक आँतोंमें शरीरका मल बाहर निकालनेकी पूरी पूरी शक्ति न आ जाय तब तक एनिमाका उपयोग बराबर जारी रखना चाहिए । उपवास छोडनेके समय पहले दो या तीन दिनोंतक केवल मीठे नीबू या अगूरके रस पर रहना चाहिए और तदुपरान्त दूधका सेवन आरम्भ कर देना चाहिए । उस समय पहले पहले आधा गिलास गरम दूध पीना चाहिए । यदि केवल दूध अच्छा न लगता हो तो उसमे अबूर, खजूर या आलू भी मिला लेना चाहिए । यदि आवश्यकता हो तो चावल, काजू और शोरवे आदिका व्यवहार भी आरम्भ कर देना चाहिए, पर उसके साथ ही साथ एनिमा लेना भी भूल न जाना चाहिए । मैंने तीन तान दिनके कई उपवास छोडे हैं मुझे निश्चय हो गया है कि उस समयके लिए दूधसे बढकर और कोई उत्तम पदार्थ नहीं है । "

उपवासचिकित्साके प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर टेनरने अपना पहला उपवास छोडते समय आरम्भसे हा तरबूज खाना शुरू किया था । यद्यपि कुछ विशेष अवस्थाओंमे तरबूज उपयुक्त हो सकता है तथापि प्रत्येक मनुष्यके लिए आरम्भसे ही तरबूज खाना ठीक न होगा । एक व्यक्तिने पहले कुछ अखरोट पानीमें भिगो लिये थे और तब उन्हें आठ दस पहर तक सुखाया था उपवास छोडनेके समय उसने वही सुखाये हुए अखरोट खाये थे । उसका कथन है कि इस भोजनसे मेरा पूरा सन्तोष हुआ था और मुझे कोई हानि नहीं पहुँची थी । अपने इच्छानुसार कोई हलका और शीघ्र पचनेवाला भोजन किया जा सकता है । उसमें विशेष ध्यान रखने योग्य केवल एक बडी बात है कि **उपवास छोडनेके उपरान्त**

बहुत अधिक भूख लगने पर कभी भोजन बहुत अधिक न करना चाहिए। जहाँ तक हो सके बहुत ही कम खाना चाहिए। इस प्रकार दो चार दिनोंतक नहीं बल्कि दो तीन सप्ताहों तक रहना चाहिए।

डाक्टर हरबर्ट केरिंगटन उपवास-चिकित्साके बहुत बड़े ज्ञाता और पंडित माने जाते हैं। उपवास छोड़ने और उस समय भोजन करनेके सम्बन्धमें आपकी जो सम्मति है उसे परमोपयोगी समझकर हम इस स्थान पर उसका आशय दे देते हैं:—

" उपवास छोड़नेकी क्रिया मेरी समझमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। क्योंकि यदि उपवास छोड़नेमें किसी प्रकारकी असावधानी की जायगी तो उपवासमें उत्पन्न अधिकांश लाभ प्रायः बहुत कम हो जायँगे। जिन लोगोंको उपवाससम्बन्धी विशेष अनुभव है वे यह बात भलीभाँति समझते होंगे कि उपवास छोड़नेके समय कितनी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। मैं अपने अनुभवके अनुसार इस सम्बन्धमें कुछ बातें बतलाता हूं।

" उपवाससम्बन्धी सबसे बड़े इस नियमका ध्यान सदा और अवश्य रखना चाहिए कि **प्रकृति हमें स्वयं यह बतलाती है कि उपवास कब छोड़ना चाहिए।** उस सम्बन्धमें हमारे शरीरमें कुछ विशेष और स्पष्ट चिन्ह प्रकट होते हैं जिनमेंसे कुछका उल्लेख यहाँ किया जाता है,—

(१) उपवासकालमें शरीरकी जो गरमी साधारणसे अधिक अथवा कम हो जाती है, वह उपवास छोड़नेके समय अपनी ठीक (Normal) अवस्थामें आ जाती है।

(२) उपवासकालमें जीभ पर जो पपड़ी जमी होती है वह धीरे धीरे आपसे आप उतर जाती है और जीभ साफ हो जाती है।

(३) उपवासकालमें नाड़ी अधिक शीघ्रतासे अथवा धीमी चलती है, पर उपवास छोड़नेकी आवश्यकता होने पर वह अपने नियमित रूपसे चलने लगती है।

(४) उपवासकालमें जो साँस दुर्गन्धयुक्त रहती है वह उपवास पूरा होने पर बिलकुल साफ और बिना दुर्गन्धकी हो जाती है।

(५) त्वचा तथा शरीरके दूसरे अंग जो पहले विशेष या न्यून रीतिसे काम करते थे, वे अपनी साधारण स्थितिमें आकर पूर्णरूपसे काम करने लगते हैं।

(६) अन्तिम और सबसे बडा चिह्न यह है कि भूख नियमित रूपसे और अपनी साधारण अवस्थामें लगती है, कृत्रिम भूखकी तरह विशेष रूपसे नहीं लगती।

" कई दिनों तक किसी प्रकारका भोजन न करनेके उपरान्त जब शरीर अपनी साधारण अवस्थामें पहुँच जाता है तब उक्त चिह्न प्रकट होते हैं।

" इस अवसर पर प्रश्न हो सकता है कि वास्तविक और कृत्रिम भूखकी पहचान क्या है? दोनों अवस्थाओंमें ही मनुष्य कह सकता है कि मुझे भूख लगी है। उनमेंसे एकको भोजनकी वास्तविक आवश्यकता है, पर दूसरेको वैसी आवश्यकता नहीं होती। ऐसी दशामें यह किस प्रकार जाना जा सकता है कि उनमेंसे किसे भोजन दिया जाना चाहिए और किसे नहीं?

"इसलिये वास्तविक और कृत्रिम भूखको पहचाननेके लिए उनका कुछ अन्तर बतला देना यहाँ आवश्यक जान पडता है। जिस समय झूठी भूख लगती है उस समय पेटमें एक प्रकारकी थोडी बहुत गुड्गुडी होती है। पर जिस समय वास्तविक या सच्ची भूख लगती है उस समय शरीरमें वे चिह्न उत्पन्न होते हैं, जो ऊपर बतलाये गये हैं। इसके अतिरिक्त गलेमें एक विशेष प्रकारकी खुश्की सी होती है, जो वास्तवमें प्यास तो नहीं होती पर प्यास सी जान पडती है। गलेकी गिलटियों (Glands) में से एक प्रकारका पानी या रस निकलने लगता है। यह पानीका रस निकलना ही वास्तविक भूखका सबसे अच्छा और प्रामाणिक चिह्न है। उपवास-कालकी समाप्तिके और चाहे जितने लक्षण शरीरमें उत्पन्न हो जायँ, पर जब तक गलेकी गिलटियोंसे पानी न निकलने लगे तब तक कभी उपवास न छोड़ना चाहिए।

" दूसरा लक्षण यह है कि जिस मनुष्यको झूठी भूख लगी होगी, वह जो कुछ पावेगा सो सब अपने पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिए खा लेगा। पर जिसे वास्तविक भूख लगी होगी वह खानेके लिए कोई विशेष पदार्थ माँगेगा। उस अवस्थामें समझ लेना चाहिए कि अब वास्तविक भूख लगी है।

" इस अवसर यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि जब तक वास्तविक भूखके चिह्न प्रकट न हों तब तक उपवास करनेमें कोई जोखिम तो नहीं है ? उपवाससमाप्तिके चिह्न उत्पन्न होनेसे पहले ही उपवास करनेवाला मर तो न जायगा ? इस प्रश्नका बहुत सीधा, सहज, निश्चयात्मक और विश्वसनीय उत्तर यही है कि, ऐसा कदापि न होगा । इसमें न तो किसी प्रकारकी जोखिम है और न जान जानेका भय है । जोखिम अथवा मृत्युकी अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूखके चिह्न अवश्य प्रकट हो जायँगे । बात यह है कि अन्नके बिना मरनेसे पहले कुछ समय तक मनुष्यका शरीर धीरे धीरे गलता रहता है और उस अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूख लग जाती है।

" जो लोग बिना अन्नके भूखों मरते हैं उनके शवकी परीक्षा करके यह जाना गया है कि मरनेके समय उनके शरीरमेंसे नीचे लिखे पदार्थ इतने मानमें घटते हैं—

चरबी ९७	भर	
स्नायु (Tissuese)...३०	"	
कलेजा (Liver) ..५६	"	
तिल्ली (Spleen) ...५३	"	
और खून केवल १७	"	नष्ट होता है ।

" ज्ञानतन्तुओं (Nervous system) का कोई अंश नष्ट नहीं होता । इस कथनके प्रमाण शरीर-शास्त्रके प्रत्येक प्रामाणिक ग्रन्थमें मिल सकते हैं ।

" ऊपरके अंकोंसे इस बातका पता लग जाता है कि उपवास-कालमें शरीरका वही अंश सबसे अधिक नष्ट होता है, जिसका उपयोग हमारे शरीरके अस्तित्वके लिए बहुत ही कम होता है । वह अंश चरबी है । इसके अतिरिक्त शरीरमें और भी अनेक अनावश्यक पदार्थ होते हैं, जिनपर उपवासकालमें शरीरका पोषण होता है और यही शरीरके नीरोग होनेका प्रधान कारण है ।

" उपवास छोड़नेके सम्बन्धमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि भोजन आरम्भ करनेके समय बहुत सावधानीसे और समझ बूझ कर सब काम करना चाहिए । उपवास जितने ही अधिक दिनोंका हो उसे छोड़नेके समय उतनी ही अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है । साधारण कागज छापनेका प्रेस जब कुछ समय तक बन्द रहनेके उपरान्त फिरसे चलाया जाता है उस समय आरम्भमें उसे

हमेशा बहुत धीरे धीरे चलाते हैं और उसकी गति क्रमश बढाते जाते हैं। पर यदि उसे आरम्भमें ही पूरी तेजीके साथ चलाया जायगा तो वह अवश्य ही टूट जायगा अथवा उसका कोई कल पुरजा बिगड जायगा। उस समय वह यन्त्र ऐसा बिगड जायगा कि उसे बहुत समय तक बन्द रखनेकी आवश्यकता होगी। ठीक यही दशा अपने शारीरिक यन्त्रकी भी समझिए। यदि कुछ दिनोंके उपवासके उपरान्त तुरन्त ही इससे पूरी तेजीसे काम लिया जायगा तो वह अवश्य ही बेकाम हो जायगा, इस लिए उपवास हमेशा धीरे धीरे छोड़ना चाहिए और ज्यों ज्यों दिन बीतते जायँ त्यों त्यों भोजनकी मात्रा बढ़ती जानी चाहिए। इस प्रकार पाचनक्रिया उत्तमरूपसे होती रहेगी और शरीरका बल भी क्रमश बढ़ता जायगा।

"उपवास जब तक स्वाभाविक रूपसे स्वय ही पूरा न हो जायँ, जब तक उसकी पूर्तिके सब लक्षण दिखाई न देने लगें तब तक उसे स्वय न छोड देना चाहिए। बीचमें ही उपवास छोडना मानों चलती गाडीमें रोडा अटकाना है। शरीरका आरोग्य क्रियामें इससे बहुत विघ्न पडेगा। पेटमें आये हुए नये पदार्थोंको ठिकाने लगानेमें ही शक्ति लगने लगेगा और आरोग्य क्रिया बहुधा मन्द पड जायगी। इसलिए उपवासको बिना पूरा किये बीचमें ही छोड देना ठीक नहीं है। मान लीजिए कि किसी मनुष्यने १५ दिनों तक उपवास किया। उसकी जीभ पर पपडी अभीतक जमी हुई है और उसकी साँसमेंसे बदबू निकलती है, उस समय यदि वह एक ग्रास भी खा लेगा तो बहुत शीघ्र उसकी भूख बढने लगेगी और शरीरकी आरोग्य क्रिया बन्द हो जायगी। उसकी जीभपरकी पपडी उतर जायगी, साँसकी बदबू जाती रहेगी, उसके शरीरके विषोंका बाहर निकलना बन्द हो जायगा और शरीरकी अधिकाश शक्ति भोजन पचानेमें लगने लगेगी।

"इस अवसर पर यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि उपवास आरम्भ करनेके दो दिन बाद मनुष्यको भूख ही नहीं लगती। यही आरम्भिक दो दिन बडी कठिनतासे बीतते हैं और यह कठिनता शरीरके अस्वाभाविक दशासे स्वाभाविक अथवा शान्त दशामें आनेके कारण होती है। इन दो तीन दिनोंके उपरान्त उपवास करनेवालेका समय बहुधा बहुत शान्तिपूर्वक और आनन्दसे कटता है। जबतक उसके शरीरके विषोंका शमन नहीं हो जाता तबतक उसे वास्तविक भूख नहीं लगती।

"सच्ची भूख लगना ही उपवासकी समाप्तिका सबसे अच्छा लक्षण है। सच्ची भूख हमें यह बतलाती है कि हमारे शरीरसे सब प्रकारके विष बाहर निकल गये हैं और अब वह भोजनके लिए तैयार हो गया है। उस अवस्थामें भोजनके विषयमें दो बातें विचारणीय होती हैं। एक तो यह कि भोजन कितना होना चाहिए और दूसरे यह कि वह किस प्रकारका होना चाहिए।

"ऊपर बतलाया जा चुका है कि आरम्भमें भोजन बहुत ही कम होना चाहिए। पहले सप्ताह तो बहुत ही कम भोजन करना चाहिए और उसकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ानी चाहिए और तदुपरान्त साधारण और नियमित भोजन करना चाहिए। पर उस दशामें भी इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि दिन रातमें केवल दो बार भोजन किया जाय और कुछ भूख बाकी रहने पर ही भोजनसे हाथ खींच लिया जाय। उपवास छोड़नेके उपरान्त सबसे पहले दो दिनों तक केवल तरल पदार्थोंसे ही भूख शान्त करनी चाहिए। उस समय दृढ़तापूर्वक भूखको अपने वशमें रखनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

"उपवास छोड़नेके समय किस प्रकारका भोजन करना चाहिए इसके विषयमें कुछ मतभेद है। डाक्टर डेवीकी सम्मति है कि उस समय जिस चीजकी इच्छा हो वहीं चीज खाई जाय। पर मेरी सम्मतिमें यह विधान ठीक नहीं है। इसका कारण यह है कि उस समय मनुष्यका मन तरह तरहकी चीजों पर चलता है, यदि वह सभी चीजें खाने लगा तो उनमेंसे बहुतसी उसके लिए हानिकारक प्रमाणित होंगी। बहुतसे रोगियोंके अनुभवसे मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि मनुष्य जन्मसे जो पदार्थ अधिक मानमें खाता आता है, उपवास छोड़नेके समय उसकी रुचि साधारणतः उसी पदार्थकी ओर होती है। उत्तरीय ध्रुवके एस्किमो लोग उपवास छोड़नेके उपरान्त चरबी और मछली और अंगरेज लोग उबाला हुआ मांस और आलू ही माँगेंगे। जो लोग जन्मसे अन्न, शाक और फल खाते आये होंगे वे सदा अन्न और फल ही माँगेंगे।

"परन्तु प्रेरणा और बुद्धि दोनों सदा साथ ही साथ काम नहीं करतीं। इसलिए क्षुधातुरकी माँगी हुई चीज उसे देना सब दशाओंमें ठीक नहीं। मनुष्य मात्रके शरीरका संगठन समान प्रकारका और समान पदार्थोंसे हो होता है। इसलिए उन सबके लिए एकसे एक उस स्वाभाविक दशामें एक ही प्रकारका ऐसा

निश्चित भोजन होना चाहिए जो उनके शरीरके लिए लाभदायक और पुष्टिकर हो। मेरी समझमें उपवास छोडनेके समय इस प्रकार भोजन आरम्भ करना चाहिए —

" **पहला दिन**—जब उपवास छोडनेका समय आवे और उसकी समाप्तिके सब लक्षण दिखाई दें उस समय उपवास करनेवालेको एक गिलास सन्तरेका पतला रस पीना चाहिए। यदि वह कुछ गाढा हो तो उसमें थोडा पानी भी मिला लेना चाहिए। इसी प्रकारके और दूसरे फलोंका रस भी लिया जा सकता है, पर वह रस न तो बहुत ठढा होना चाहिए और न उसमें चीनी मिली होनी चाहिए।

" **दूसरा दिन**—रोगीको इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पेटमे अधिक पदार्थ न चला जाय, क्योंकि उस दिन भूख बहुत लगती है और भीषण रूप धारण कर लेती है। उस समय इच्छा और भूखको वशमें रखनेकी बहुत आवश्यकता होती है। यदि उस समय विशेष सावधानी न रक्खी जायगी तो परिणाम बहुत ही भयङ्कर होगा।

" दूसरे दिनके लिए सबसे अच्छी खोराक सन्तरा है। खजूर और अंजीर आदि और अवसरा पर भले ही लाभदायक हों पर उपवास छोडनेके समय उनका व्यवहार करनेकी सम्मति मैं नहीं देता। दूसरे दिन जहाँ तक हो सके एक ही फल खाकर काम चलाना चाहिए। यदि एक फल खाकर न रहा जाय तो एक और खा लेना चाहिए—इससे अधिक नहीं।

" **तीसरा दिन**—उपवास छोडनेके दो ही तीन दिन बाद तक बहुत साव धानीकी आवश्यकता होती है। इसके बाद यदि दिन पर दिन भोजन बढाया, जाय तो कोई हानि नहीं होती। तीसरे दिन एक आध रोटी, थोडी तरकारी और एक गिलास गरम दूध तक लिया जा सकता है। उस दिन एक तो भोजन बहुत सादा होना चाहिए और दूसरे मात्रामें भी कम होना चाहिए।

" उपवास छोडनेके उपरान्त बहुधा दूध ही सबसे अधिक उपयुक्त और लाभ दायक होता है। उपवास छोडनेके दूसरे दिन जो दूध पीया जाय वह इतना ही गरम हो कि उससे मुँह न जले। दूध एक एक घूँट करके और बहुत धीरे धीरे पीना चाहिए। हर एक घंटे बाद एक गिलास दूध पीया जा सकता है। तीसरे दिन हर घण्टे पर एक गिलास दूध पीना चाहिए। दूधसे शरीरका बल भी बढता है और वजन भी। शरीरके लिए सबसे अच्छा पोषक पदार्थ यही माना जाता है। प्रत्येक दशामें इससे लाभ ही होता है हानि कभी नहीं होती।'

दिन रातमें एक वार भोजन।

प्रत्येक बुद्धिमान् यह बात स्वयं ही समझ सकता है कि बहुत अधिक या आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेका शरीर पर बहुत बुरा परिणाम होता यदि पहला भोजन न पचा हो, पेटमें मौजूद ही हो और ऊपरसे एक और भोजन कर लिया जाय तो निश्चय ही शरीरको उसका बहुत बुरा परि- भोगना पडेगा। आरम्भके पृष्ठोंमें एक स्थान पर बतलाया जा चुका है कि देशोंमें प्रत्येक तीन घटेके बाद भोजन करनेकी प्रथा है। भारतवासी भी कमसे कम तीन चार बार अवश्य ही भोजन और जलपान करते हैं, पर अधिक भोजन करनेका यह रोग हालका ही है। आजसे डेढ दो हजार वर्ष ससारके किसी भागके निवासियोंको इतना अधिक खानेका लत नहीं था। दोनों सभी देशों और जातियोंके लोग इस उन्नत और सभ्य-कालकी अपेक्षा प्रकृतिके प्राकृतिक नियमोंका कहीं अधिक पालन करते थे। वे सदा खुली हवामें थे, बहुत सा परिश्रम और लम्बी यात्रायें करते थे, और जब तक अच्छी भूख न लगती थी तब तक भोजन न करते थे। बल्कि यदि यह कहा जाय एक बारका किया हुआ भोजन पहले खूब परिश्रम करके पचा लेते थे, तब बार भोजन करते थे तो अधिक उत्तम होगा। प्राचीन भारत, चीन, मिस्र, रोम यूनान आदि सभी देशोंके प्राचीन निवासी यह बात भली भाँति समझते थे व, कैसा और कितना भोजन करना चाहिए। पर आजकलकी सभ्यता, और उन्नतिने जहाँ हमें बहुतसे लाभ पहुचाये हैं वहाँ स्वास्थ्यसम्बन्धी बहुत हानि भी पहुँचाई है। प्राचीनकालमें लोग अधिक परिश्रम भी करते थे तरह तरहके कष्ट भी बहुत सहजमें सह लेते थे। पर आज कलकी सभ्यताने को बहुत ही सुकुमार और आराम-तलब बना दिया है। इस सुकुमारता आरामतलबीका यथेष्ट फल भी लोगोंको भोगना पडता है। यह फल बल्कि हजारों तरहके नये नये रोगोंके रूपमें प्रकट होता है।

ारके अधिकाश प्राचीन निवासी दिन रातमें केवल एक बार सन्ध्याके भोजन किया करते थे। दिन भर अपने काम धन्धोंमें लगे रहते थे, भर- श्रम करते थे और तब सन्ध्याके समय परिवारके सब लोग एकत्र होकर

आनन्दपूर्वक भोजन करते थे। दिन भर कुछ न खाने और खूब परिश्रम करनेके कारण उन्हें बहुत अच्छी तरह भूख लगती थी और उस समय वे लोग जो कुछ खाते थे वह अच्छी तरह पचा लेते थे। उनका रूखा-सूखा, हल्का और थोड़ा भोजन उनके शरीरके पोषण और बलवृद्धिके लिए यथेष्ट होता था—रोग, आलस्य या विकार आदि उत्पन्न करनेके लिए उसका कोई अंश बच ही न रहता था। भोजनके उपरान्त संगीत, नृत्य, और हास्यविनोद आदिका आरम्भ होता था और यही सब बातें उन दिनों आज कलके सुलेमानी नमक और हिंगाष्टककी गोलियोंका काम देती थीं। कुछ जातियोंमें केवल दिनके समय ही खानेकी प्रथा थी। उन लोगोका मुख्य भोजन आठ पहरमे केवल एक बार होता था और वह भी उतनी ही मात्रामें, जितनी मात्रामें आज कलके लोग 'जलपान' करते हैं।

यद्यपि प्रकृति और प्रवृत्तिका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, तो भी अभ्यास एक ऐसी चीज है जो सबको और फलत प्रवृत्तिको भी दबा लेती है। आप दिन भरमे पसेरी भर अन्नका भी सत्तानाश कर सकते हैं और डेढ़ पाव या आध सेरमे भी आपका निर्वाह बहुत मजेमें हो सकता है। इसमे आवश्यकता है केवल अभ्यासकी। यदि आप आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेका अभ्यास करेंगे अवश्य ही आपकी भूखसम्बन्धी प्रवृत्ति और सहज-बुद्धिका थोड़े समयमें नाश हो जायगा और आप उस अभ्यासके वशीभूत हो जायँगे। यदि बहुत ही छोटी अवस्थाके दो बालक भिन्न भिन्न दाइयोंको दे दिये जायँ और उनमेंसे एक दाई बहुत थोड़ी थोड़ा देरके बाद दूध पिलाती रहे और दूसरी नियमित रूपसे दो दो या तीन तीन घंटोंके बाद दूध पिलाया करे तो निश्चय है कि पहली दाईवाला बालक—चाहे बीमार हो क्यों न हो जाय—हर दम दूधके लिए रोया करेगा, पर जिस बालकको नियमित रूपसे छ या आठ बार दूध पिलाया जायगा उसे सातवीं या नवीं बार दूध पिलाना भी बहुत कठिन हो जायगा। इसका कारण यही है कि अभ्यासके कारण उसकी प्रवृत्ति, इच्छा और सहज बुद्धिका नाश हो जायगा, और इस नाशका परिणाम सदा घातक और अत्यन्त हानिकारक ही होगा। उसका स्वास्थ्य सदा बिगड़ा रहेगा और वह कभी शारीरिक सुख न भोग सकेगा।

बहुधा हम लोग देखा देखा करते हैं कि नागरिकोंको देहातियोंका स्वास्थ्य देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। नागरिक बहुतसा घी—चीनी, पूरी—पक्वान, मेवा-

मिठाई, मांस-मछली और पुआ-पकौड़ी खाया करते हैं, पर सदा रोगी और दुर्बल ही बने रहते हैं। लेकिन देहातवाले बाजरे, जौ और मकईकी सूखी रोटी खाकर इतने नीरोग और हृष्ट पुष्ट बने रहते हैं कि यदि वे चाहें तो दो एक नागरिकोंको बड़े आनन्दसे बगलमें दबाकर कोस दो कोसका चक्कर लगा सकते हैं। इसका कारण यही है कि वे स्वच्छ वायुमें रहकर इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि उनका सारा भोजन पच जाता है और दूसरे भोजनके समय तक उन्हें खूब गहरी भूख लग जाती है। एक देहाती प्रातःकाल चार बजे उठकर अपनी गौओं-भैंसोंके सानी-पानीका सब प्रबन्ध करेगा और ग्यारह बारह बजेतक या तो एकाध बीघा खेत जोतकर रख देगा और या घी दूध, मक्खन, खोआ आदि बेचनेके लिए चार पाँच कोसके किसी शहरका चक्कर लगा आवेगा। शहरमें ही वह थोड़ेसे भुने दाने खाकर पानी पी लेगा और अपने घर पहुँच कर थोड़ी देर तक सुस्तानेके बाद फिर किसी शारीरिक परिश्रममें लग जायगा। ऐसी दशामें सन्ध्या या रातके समय उसे खूब तेज भूख लगना बहुत ही स्वाभाविक है और तेज भूख लगने पर जो कुछ खाया जायगा वह अवश्य ही बहुत अच्छी तरह पच कर हमारे शरीरमें लगेगा और हमारे अंगप्रत्यंगको पुष्ट करेगा। शहरके रहनेवाले सवेरे उठते ही स्नान आदिसे निश्चिन्त होकर जलपान पर टूटेंगे, मानो रात भर उन्होंने चक्की ही पीसी हो। जलपानके उपरान्त वे हाथमें या तो ताश, अखबार या किताब आदि उठा लेंगे और या अपने मकानके नीचेवाली अपनी दूकान पर जा बैठेंगे। ग्यारह बजे आप यह कहते हुए उठेंगे कि आज कुछ भूख तो नहीं मालूम पड़ती, पर चलो खा ही आवें, नहीं तो रसोई ठंढी हो जायगी। नौकरीपेशा लोग ज्यों त्यों करके इस विचारसे पेट खूब कस लेंगे कि अब दिन भर तो कुछ मिलेगा ही नहीं और चटपट कपड़े पहन कर इक्के या ट्रामवे पर घसिटते हुए कचहरी या दफ्तरमें पहुँच जायँगे। दिन भर उनके हाथमें खाली कलम रहेगी और वह भी बड़ा भारी बोझ मालूम पड़ेगी। अमीर लोग दिन भर तो तकियों और गद्दियोंमें गड़े हुए पड़े रहेंगे और सन्ध्या समय गाड़ी पर सवार होकर अपने बदले घोड़ोंसे थोड़ा शारीरिक परिश्रम करवाके निश्चिन्त हो जायँगे। इन सभी लोगोंको सवेरेके जलपान और दोपहरके भोजनके अतिरिक्त सन्ध्याका जलपान और रातका भोजन भी अवश्य ही चाहिए। यदि दो पह-

रके भोजनके बाद कुछ फल और रातके भोजनके उपरान्त थोड़ा दूध मिल जाय तो उसके लिए भी पेटमें जगहकी कमी नहीं है। ऐसी अवस्थामें यदि देहातियोंका स्वास्थ्य देखकर शहरवाले अपना मन न मसोसेंगे तो और क्या करेंगे? आपको नगरोंमें जो दुबले-पतले, जन्मरोगी और धँसी हुई आँखोंवाले हजारों लाखों दूकानदार, फेरीदार, मुंशी, शिक्षक, वकील और छात्र आदि मिलेंगे उनके शारीरिक कष्टका कारण भीमसेनी भोजनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इन शारीरिक कष्टोंसे बहुत ही सहजमें छुटकारा पानेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि मनुष्य अपना भोजन धीरे धीरे कम और परिमित करता हुआ दिन रातमें केवल एक बार भोजन करनेका अभ्यास डाले। यह अभ्यास अधिकसे अधिक एक मासमें हो जायगा और जब एक दो मासमें वह केवल एक बार भोजन करनेके गुण बहुत अच्छी तरह समझ लेगा तब नियमित भोजनके अतिरिक्त उसे अमृततक पिलाना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव सा हो जायगा। दिन रातमें केवल एक बार भोजन करनेवाला मनुष्य कभी आवश्यकतासे अधिक खा ही नहीं सकता। उसके गलेके नीचे उतना ही भोजन उतरेगा, जितना उसका पक्वाशय चौबीस घंटोंमे पचा सकेगा। भारतवर्षमें ऐसे सैकड़ों हजारों आदमी मिलेंगे जो व्रत रूपमें केवल एकाहार करते हैं। ऐसे लोग देखनेमें स्वभावतः प्रसन्नचित्त, शरीरसे हृष्टपुष्ट और सात्विक प्रवृत्तिके होंगे। निश्चित समयको छोड़कर और कभी कुछ खानेकी उनकी प्रकृति ही न होगी। क्यों? इसी लिए कि वे प्रकृतिके अनुकूल आचरण करते हैं। वे कभी रोगी नहीं होते। क्यों? इसी लिए कि वे अपने पेटकी मशीन कभी व्यर्थ नहीं चलाते।

जो लोग दिन रातमें केवल एक बार भोजन करना चाहते हों उनके लिए भोजनका सबसे अच्छा समय सन्ध्या है। यह एक बहुत ही साधारण बात है कि पेट भरे होने पर न तो परिश्रम होता ही है और न परिश्रम करना उचित ही है। दिनके समय मनुष्यको बहुत कुछ शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करना पड़ता है। ऐसी दशामें दिनके समय किसी प्रकारका भोजन न करके केवल रातके समय भोजन करना बहुत ही श्रेष्ठ और लाभदायक है। एक बार जब अनुभवसे दिनको भोजन न करनेके गुण मालूम हो जाँयगे तब फिर कभी किसी तरहकी चीज पर आदमीका मन ही न चलेगा। वयस्क लोग एक मासमें

बहुत अच्छी तरह इनका अभ्यास कर सकते हैं और बालकोंको दस वर्षकी अवस्थातक सहजमें इसका अभ्यास डाला जा सकता है। डा० लिंकन नामक एक विद्वान् अपने बालकोंको दिनमें कभी किसी प्रकारकी चीज खानेके लिए नहीं देते थे और प्राय कहा करते थे कि बिना दिन भर काम किये भोजनकी इच्छा करना ठीक वैसा ही है, जैसा कि किसी कारीगरका बिना दिन भर काम किये पहले ही अपनी मजदूरी माँगना।

मनुष्योंको बहुतसे रोग ऐसे होते हैं, अधिक भोजनके अतिरिक्त जिनका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। ऐसे लोगोंको जो अधिक भोजन करके ही अपना शरीरको रोगी बनाते हैं दिन रातमें केवल एक बार भोजन करनेसे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है। एक बार भारतमें एक पादरी महाशय ज्वरसे बुरी तरह पीड़ित हुए। सात महीने तक डाक्टरोंने उनका शरीर दिनमें तीन बार भोजन, छ बार औषध और कदाचित् इससे भी अधिक बार दूध, और व्हिस्कीसे खूब भरा। यहाँ तक कि अन्तमें वे सूख कर काँटा हो गये और विवश होकर अपने देश अमेरिकाको चले गये। वहाँ सौभाग्यवश उनकी भेंट एक योग्य उपवासचिकित्सकसे हो गई। उपवास चिकित्सकने उन्हें दिन रातमें केवल एक ही बार भोजन देना आरम्भ किया और थोड़े ही दिनोंमें उनकी सारी शिकायतें दूर हो गईं। चार महीनेके अन्दर ही वे बहुत हृष्टपुष्ट हो गये और तौलमें आध मन बढ़ गये। वहाँसे नीरोग होकर वे फिर भारत चले आये और खूब परिश्रम करके दिन रातमें केवल एक ही बार भोजन करके रहने लगे। इस प्रकार वे चार वर्षों तक यहाँ रहे और इस बीचमें वे या उनके परिवारके लोग भी कभी बीमार नहीं हुए।

ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशनमें एक बार डा० रैवेन्सटीनने एक ऐसी बालिकाका हाल सुनाया था, जिसकी अवस्था चार वर्षकी थी और जिसके दाहिने घुटनेमें भयंकर Tuberculosis हो गया था। उस बालिकाको दिन रातमें चार बारके बदले केवल एक बार भोजन दिया जाने लगा। सुबह और शामको उसे थोड़ा थोड़ा दूध भी दिया जाता था। उस बालिकाको और भी कई भयंकर रोग थे। पर सवा बरसमें उसके सब रोग समूल नष्ट हो गये और वह वजनमें चौदह सेरसे बढ़कर उन्नीस सेर हो गई। इस अवसर पर यह बात ध्यान रखने

योग्य है कि Tuberculosis एक ऐसा रोग है, जिसका अच्छा होना प्रायः असम्भव समझा जाता है और जो रोगीके प्राण बिना लिये छूटता ही नहीं।

इंग्लैण्डमें एक बार एक स्त्रीके गर्भमें पथरीकासा एक रोग हो गया और उसमें कई सेर तौलकी एक गाँठ पड गई। उसका चेहरा बिलकुल पीला पड गया था, शरीर सूखकर काँटा हो गया था, दिनरात सिरमे दरद रहता था, कब्जियत थी, के आती थी और इसी तरहकी बीसियों शिकायतें थीं। शस्त्र-चिकित्सा करके उसके गर्भकी गाँठ तो निकाल दी गई थी, पर उसकी दुर्बलता और दूसरी सब शिकायतें बराबर बढ़ती ही जाती थीं। जब उसके बचनेकी कोई आशा न रही तब उसे दिन रातमें दो बार भोजन दिया जाने लगा। पर जब उससे कुछ लाभ न हुआ तब केवल एक बारके भोजनकी ठहरी। इससे उसकी सारी शिकायतें दूर होनेके सिवा छः सप्ताहमे उसका वजन तीन सेर बढ़ गया। जुलाई १९०१ में उसकी शस्त्र-चिकित्सा हुई थी और दिसम्बरमें वह पूर्णरूपसे नीरोग और अपने सब काम करनेमे समर्थ हो गई थी। यदि वह औषधों और भोजनके सहारे ही रक्खी जाती तो इसमें कोई सन्देह नहीं था कि वह उन्हींका शिकार बन जाती।

जलपान न करना।

यदि आरम्भमें ही आप एक दमसे दोपहरका भोजन न छोड़ सकें तो कमसे कम सबेरेका जलपान या कलेवा करना अवश्य छोड दें। इससे होनेवाले लाभ भी अपेक्षाकृत कुछ कम नहीं है। इस अवसर पर हम अपनी ओरसे कुछ अधिक न कहकर प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर डेवीके अनुभवका सारांश यहाँ पर दे देना ही अधिक उत्तम समझते हैं। आपने लिखा है—

"जिस दिन मैंने पहलेपहल जलपान छोडा था उस दिन मेरा शरीर और मन इतना हलका और प्रसन्न हुआ जितना कभी बाल्य या युवा अवस्थामें भी नहीं हुआ था। दोपहरके समय खूब भूख लगने पर मैंने बहुत अच्छी तरह भोजन किया। उस समय भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पड्ता था। रातभर सोनेके बाद प्रातःकाल कभी स्वाभाविक भूख नहीं लगती। सोना कोई ऐसी

किया नहीं है, जिससे कि उसकी समाप्ति पर ही भूख लग आवे । हजारों ऐसे आदमी हैं, जिन्होंने अपना प्रातःकालका जलपान छोड़ दिया है और थोड़े ही दिनों बाद जिन्हें कभी उसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी । यदि जलपान आवश्यक होता तो यह बात कभी न होती, क्योंकि प्रकृति अपनी आवश्यकताको पूरा किये बिना कभी नहीं मानती । यह कदापि सम्भव नहीं है कि वह अपनी किसी आवश्यकताको बिना पूरा किये ही अथवा थोड़े भोजन पर ही हमारे शरीरको बिल्कुल ज्योंका त्यों बनाये रक्खे । जो जलपान तुम बिना आवश्यकताके और केवल अपने अभ्यासके कारण करते हो, वह बड़ा सरलतासे तुम्हें उसके छोड़ देनेकी आज्ञा दे सकती है । पर यदि तुम उसकी अवश्यकताओंको पूरी तरहसे पूरा न करोगे तो आगे चलकर तुम्हें उसका फल भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा ।

"जलपान करना छोड़ दो और जब तक खूब तेज भूख न लगे तब तक कभी कुछ मत खाओ । जब तुम उस भूखके आसरे रहोगे तब अवश्य ही वह अपने समय पर उचितरूपमें मालूम पड़ेगी । उस अवसर पर तुम स्वयं ही यह निश्चय कर सकोगे कि क्या चीज और कितनी खाना चाहिए । जब तक भोजनकी पूरी पूरी आवश्यकता न हो तब तक कोई भोजन बल-वर्द्धक और स्वास्थ्य-प्रद नहीं हो सकता । वास्तविक आरोग्यता प्राप्त करनेके लिए खूब तेज भूख, खूब स्वादिष्ट मालूम होनेवाले सादे भोजन, खाद्यपदार्थको बहुत अच्छी तरह चबाने और पाचनके समय मनके खूब शान्त रहनेकी आवश्यकता होता है ।

"बिना जलपान किये अपने काम पर जाओ, दोपहरके भोजनके समय तुम्हें खूब तेज भूख लगेगी । इतनी तेज भूख लगेगी कि यदि तुम भोजनसे पहले किसी प्रकारकी शक्ति-वर्द्धक औषध खानेके अभ्यस्त होगे तो वह औषध खाना भूल जाओगे । तुमको भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ेगा और भोजनके उपरान्त तुम्हारी तबीयत इतनी अच्छी जान पड़ेगी कि तुम्हें किसी तरहका पाचक या चूरन खानेकी भी आवश्यकता न रह जायगी । कितनी सीधी बात है । जबतक वास्तविक और खूब भूख न लगे तबतक कुछ मत खाओ, चाहे सारा दिन सप्ताह या महीना भी क्यों न बीत जाय । उपवास करना बहुत ही सुरक्षित है, उसमें किसी प्रकारकी हानिकी कोई सम्भावना नहीं है ।"

यदि परिवारमें एक मनुष्य प्रातःकालका जलपान करना छोड देगा तो उससे होनेवाले लाभोंको देखकर सम्भवतः परिवारके और लोग भी बहुत ही शीघ्र अपना अपना जलपान छोड देंगे। जलपान न करनेवालोंका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, उन्हें जल्दी कभी किसी तरहकी शिकायत नहीं होती। अमेरिकावालोंका देखादेखी युरोपवाले भी जलपान न करनेके गुण समझने लगे हैं। अभी हालमें इंग्लैण्डमें एक स्वास्थ्यसवर्द्धिनी सभा स्थापित हुई है जिसका प्रधान उद्देश्य जलपानकी प्रथा रोकना है। जिस दिन उस सभाकी स्थापना हुई उस दिन उसमें नगरके बहुत बडे बडे अधिकारी, रईस और विद्वान् इकट्ठे हुए थे। यह सभा इंग्लैण्डके मेंचेस्टर नगरमें हुई थी। उस अवसर पर वहाँके 'मेंचेस्टर गार्डियन' नामक प्रसिद्ध पत्रने लिखा था–" आज मेंचेस्टर नगरमें पहले दिनोंकी अपेक्षा सैकडों जलपान कम हो जायँगे और यहाँकी स्वास्थ्यसभा थोडे ही घटोंमें अपनी स्थापनाका शुभ फल देख लेगी। सम्भवतः उसकी देखादेखी 'जलपान' का निषेध करनेवाली सैकडों सभायें स्थापित होंगी। लोगोंका बहुत सा समय केवल जलपान तैयार करनेमें ही लग जाता है। स्वास्थ्य सुधारने, आयु बढाने और सुखी रहनेके लिए इससे अच्छा और कौनसा काम हो सकता है? तरह तरहके रोगोंसे बचने और प्राप्त रोगोंसे मुक्त होनेका इससे अच्छा और कौनसा उपाय हो सकता है? जातिके लिए इससे अधिक उपकारक और कौन सी बात हो सकती है? यदि प्राकृतिक नियमोंका पालन किया जाय और अपने शरीरको अवसर दिया जाय तो अवश्य ही वह अपनी सारी मरम्मत आप ही कर लेगा। और यह प्रथा कोई नई नहीं है, केवल पुरानी प्रथाकी पुनरावृत्ति है। यह सर्व रोगनाशक कोई पेटेंट दवा नहीं है, बल्कि हमारे जीवनकी रक्षाका सर्वोत्तम उपाय है। इस नये उपायसे उन पुराने दुष्ट उपायोंका नाश होगा, जिनके कारण शरीर-रक्षाके बहानेसे जातिको तरह तरहके कठोर दण्ड सहने पडते हैं।"

लण्डनके एक दिग्गज डाक्टरने–जो इंग्लैण्डके कई विशाल अस्पतालोंमें चिकित्सकका काम कर चुके हैं–रोगोंके कारणोंके सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तकमें आपने एक स्थल पर लिखा है–" अमेरिकाके डा० डेवीने एक ग्रन्थ लिखा है, जिसका मुख्य तात्पर्य यह है कि कुछ दिनों तक पूरा पूरा उपवास करनेसे सैकड़ों तरहके रोग नष्ट हो जाते हैं और

बहुतसे साधारण रोग केवल जलपान छोड देनेसे ही छूट जाते हैं। यदि पक्वाशयको सोलह घटों या उससे अधिक समय तक शान्तिपूर्वक अपना काम करने दिया जाय तो बहुतसे रोगोसे मुक्ति हो सकती है। उस पुस्तकमें इस क्रियासे अच्छे होनेवाले बहुतसे लोगोंके विवरण दिये गये हैं। म जहाँ तक समझता हूँ, उनका तर्क अकाट्य है और कथन बिलकुल सत्य है।

"यह परिणाम निकालकर मैंने स्वय अपने ऊपर उसका अनुभव आरम्भ किया और मैंने जलपान छोड कर दिनमें केवल दो बार भोजन करके रहना आरम्भ किया। जब मैंने सवेरे और सन्ध्याका जलपान छोड दिया तब दोपहरको एक बजे मुझे बहुत अच्छी तरह भूख लगने लगी। उस समय अच्छी तरह खानेके बाद रातको आठ बजे तक कभी कुछ खानेकी मेरी इच्छा न होती थी। इसका परिणाम ठीक वैसा ही हुआ, जैसा डा० डेवीने अपनी पुस्तकमें बतलाया है। प्रात काल मेरी तबीयत बहुत प्रसन्न रहने लगी और मैं बहुत अच्छी तरह शारीरिक और मानसिक, परिश्रम करनेके योग्य हो गया। एक बजे मुझे ऐसी तेज भूख लगती थी जैसी पहले कभी बरसोंसे न लगी थी। जब मैं जलपान किया करता था तब उसके उपरान्त मुझे बहुत सुस्ती मालूम हुआ करती थी और उसके घटे दो घटे बाद तक अच्छी तरह मानसिक परिश्रम न हो सकता था। इस प्रकार मैं दिनमें दो बार भोजन करके बहुत अच्छी तरह रहने लगा।"

यह मिथ्या भ्रम मनसे निकाल डालो कि अपना स्वास्थ्य और बल बनाये रखनेके लिए हमको दिनमें तीन बार भोजन करना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्यके लिए दिन रातमे दो बार भोजन करना यथेष्ट है। बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवाले और युवावस्थाके लोग भी बडे आनन्दसे दिन रातमे केवल दो बार भोजन करके रह सकते हैं। इससे उनका स्वास्थ्य सुधरेगा तथा बल बढेगा। बहुधा लोग सवेरे स्नान आदिसे निवृत्त होते ही बिना भूख लगे जबरदस्ती कुछ न कुछ खाही लेते हैं। शरीर पर इस जबरदस्तीका बहुत ही बुरा परिणाम होता है। यदि यह अभ्यास छोड दिया जाय और प्राकृतिक नियमोंका अनुसरण किया जाय—केवल रूखी, सादा भोजन, किया, उपद चाय कि. खूब, देर, मूल, लगे—तो, ससारसे, बहुतसे रोग और फलत चिकित्सकोंके चिकित्सालय आदि भी कम हो जायँ।

खान-पानका विचार।

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपने खानपानका विचार रखना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि हम जो कुछ खाते या पीते हैं उसका प्रभाव केवल हमारे शारीरिक सगठन पर ही नहीं पड़ता, बल्कि हमारे आचार विचार और स्वभावके साथ भी उसका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ससारमें जितने जीव हैं प्रायः उन सबके लिए कुछ न कुछ विशिष्ट प्राकृतिक भोजन निश्चित होता है और निश्चित भोजनको छोडकर वह जीव और किसी प्रकारका पदार्थ नहीं खाता। आप किसी शाकाहारी पशुको लाख प्रयत्न करने पर भी कभी किसी प्रकारका मांस या कीड़े-मकोड़े आदि नहीं खिला सकते। किसी मासाहारी पशुको फल आदि खिलानेका प्रयत्न भी कभी सफल नहीं हो सकता, पर ससारके समस्त जीवोंमें अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझनेवाला मनुष्य अपने खान पानके सम्बन्धमे कभी किसी प्रकारका विचार नहीं रखता। बहुधा उसे जब जो कुछ मिलता है वह सब खा लेता है। तरह तरहके विषाक्त और मादक द्रव्य और झींगुर, घिन्नी, कुत्ते, चूहे आदि सभी उसके लिए खाद्य हैं। ससारमें कठिनतासे कोई ऐसा पदार्थ मिलेगा जिसे मनुष्य किसी रूपमें भी अपने पेटमें न उतार सकता हो। यही नहीं, वह अपने खानेके लिए नित्य तरह तरहके नये पदार्थोंका अन्वेषण और आविष्कार किया करता है। पर खान पान सम्बन्धी यह अत्याचार मनुष्य-जातिके लिए कितना हानिकारक और कितना दुखदायक है, इसका विचार करनेका कष्ट बहुत ही कम लोगोंने उठाया होगा।

मोटे हिसाबसे ससारमे दो प्रकारके खानेवाले लोग माने जाते हैं, एक शाकाहारी और दूसरे मासाहारी। शाकाहारियोंके सम्बन्धमें किसीको कुछ कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि फल और शाक आदि मनुष्यका निसर्ग सिद्ध भोजन है। मासके बड़ेसे कट्टर पक्षपाती भी चाहे 'केवल शाकाहार' की निन्दा भले ही करें, पर 'शाकाहार' पर वे किसी प्रकारका आक्षेप नहीं कर सकते। क्योंकि प्रत्येक मांसाहारी अवश्य ही शाकाहारी भी होता ही है। आक्षेप करने योग्य केवल मासाहारी ही हैं। अब देखना यह है कि मासाहारियों पर जो आक्षेप किये जाते हैं वे वास्तवमे कहाँतक सत्य हैं।

कदाचित् यहाँ इस बातको विशेष रूपसे सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता न होगी कि मांस खानेवालोंकी प्रकृति बहुधा उग्र उद्दण्ड और हिंसक हो जाता है और फलत वे लोग क्रूर, निरखुश और अत्याचारी हो जाते हैं। मांसाहारियोंके कारण दूसरे मनुष्यों और जीवोंको बहुत कुछ अत्याचार सहना और पीड़ित होना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप शेर और गौ, बाज और तोते, पठान और वैष्णव उपस्थित किये जा सकते हैं। यदि अत्याचार और बल प्रयोग आदिकी गणना गुणोंमें की जा सकती हो तो अवश्य ही मांसाहार भी उत्तम और प्रशंसित हो सकता है, अन्यथा वह इसके विरुद्ध प्रमाणित होगा। कुछ लोग मांसाहारके पक्षका समर्थन करते हुए यह कहा करते हैं कि मनुष्यको अपने अधिकारोंकी रक्षा करने और अपना अस्तित्व बना रखनेके लिए ही मांसाहारी होना बहुत आवश्यक है। इसी कोटिके एक सज्जनने एक बार अपने पक्षके समर्थनके लिए लेखकको किसी आर्ष ग्रन्थका इस आशयका एक मन्त्र सुनाया था कि सृष्टिका यह परम्परा-गत नियम है कि 'चार पैरोंवाले दो पैरोंवालोंको खायँ और दो पैरोंवाले बिना हाथ पैरवालोंको खायँ।' तात्पर्य यह कि प्रत्येक सबल अपनेसे निर्बलको खा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंमें भी इस सिद्धान्तके अनुयायियोंकी कमी नहीं है। वे लोग दुर्बलताको महान् पाप समझते हैं और उत्तरोत्तर सशक्त बनना अपना परम धर्म और कर्तव्य समझते हैं। प्रत्येक विचारवान् बिना किसी प्रकारका आगा पीछा किये राजनीतिक और सामाजिक आदि कारणोंसे यह सिद्धान्त तुरन्त स्वीकार कर लेगा और उसकी उपयोगितामें कभी किसी प्रकारका सन्देह नहीं करेगा, पर यदि कोई मांसाहारी इस सिद्धान्तको अपनी पाशविक वृत्तिके समर्थन और पोषणके लिए सामने रक्खेगा तो विचारवानोंको अवश्य ही उस पर दया और हँसी आवेगी। अपना अस्तित्व बनाये रखने और राजनीतिक अधिकार रक्षणके लिए अधिकसे अधिक बलकी ही आवश्यकता हो सकती है। क्रूर, भीषण और अत्याचारी प्रकृतिसे उसमें क्या सहायता मिलेगी? कोई मांसाहारी दावेके साथ यह बात नहीं कह सकता कि उसमें किसी शाकाहारीसे अपेक्षा अधिक बल है। शारीरिक बल बहुधा शारीरिक शक्तियोंके निरन्तर और सदुपयोगसे ही बढ़ता है। अकेले मनुष्य जिसके आचार आदि परिमित हों बलिष्ठ हो जाता है। मांसाहारसे शरीरकी वृद्धि कभी किसी प्रकारकी सहायता नहीं मिल सकती, बल्कि

उलटे उससे मनुष्यका शरीर तरह तरहके भयकर भयंकर रोगोंका घर हो जाता है और वह उसकी मृत्युका कारण होता है। इसका मुख्य कारण यही है कि मास मनुष्यका स्वाभाविक भोजन नहीं है।

भारत सरीखे दरिद्र देशोंमें कुछ लोग मास मछली खाना इसलिए उपयुक्त समझते हैं कि उसमें दाम कम लगता है। मांस तो अन्नसे सस्ता पड ही नहीं सकता, रही मछली सो उससे भी सस्ते दामके शाक आदि प्राय सभी स्थानोंमें मिलते हैं। इसके अतिरिक्त यदि यह बात भी मान ली जाय कि मास और मछली बिलकुल मुफ्त मिलती है और अन्न, फल और दूध आदिमे घरकी सारी जमा लग जाती है तो भी मांसाहारका समर्थन नहीं होता। क्या कोई पदार्थ केवल इसी विचारसे खाद्य सिद्ध हो सकता है कि उसमें हमारा दाम नहीं लगता? कदापि नहीं। किसी पदार्थको खाद्य सिद्ध करनेके लिए उसमें प्रधानत कुछ विशिष्ट गुणोंका आवश्यकता होती है, मूल्यका प्रश्न तो बहुत ही गौण है। साथ ही यह बात भी विचारणीय है कि मास मछली आदि कहाँ तक सस्ती पडती है। पर उसके सस्तेपनका विचार करनेके समय डाक्टराकी उस फीस और औषधियों आदिके मूल्यको न भूल जाना चाहिए जो मासाहारके परिणामस्वरूप हमारी गाँठसे निकल जाता है। यदि मासाहारके कारण होनेवाले भीषण और प्राणघातक रोगोंका भी विचार कर लिया जाय तो सम्भवत ससारमें इससे बढकर मँहगा सौदा और कोई न दिखाई देगा।

मासाहारियोंने अपने पक्षके समर्थनके लिए जहाँ और तरह तरहकी युक्तियाँ लडाई हैं वहाँ मनुष्यके शारीरिक और विशेषत मौखिक सगठनकी भी बहुत कुछ आड ली है। पर शरीर शास्त्रके आधुनिक बडे बडे विद्वानोंने परीक्षा और अनुभवसे यह बात सिद्ध कर दी है कि शरीर सगठनके विचारसे मनुष्य शाकाहारी ही है, मासाहारी नहीं। इससे अतिरिक्त लेखकने एक बार स्वर्गीय पं० चुन्नीलाल शर्माको–जिन्होंने शायद बौद्ध धर्मसे मिलता जुलता कैरलमें 'निर्विकल्प' नामक एक नया सम्प्रदाय खडा करनेका विचार किया था–अपने व्याख्यानमें यह कहते सुना था कि ससारका कोई जीव वास्तवमे और स्वभावत मासाहारी नहीं होता, यहाँ तक कि शेरनीका बच्चा भी जन्म लेते ही पहले अपनी माताका दूध पीता है, बकरी या भैंसेका मांस नहीं खाता। पर ये सब विषय अपेक्षाकृत अधिक

गूढ़ हैं और इन पर विचार करना बहुत बड़े बड़े विद्वानोंका ही काम है। पर मानवशरीर पर पड़नेवाले मासके प्रभाव आदिका विचार बहुत कुछ वादविवाद और अनुभव आदिके कारण इतना सरल, स्पष्ट और सिद्ध हो गया है कि हम बिना किसी प्रकारकी कठिनताके उसे अपने पाठकोंके सामने रख सकते हैं।

जो पदार्थ दाँतोंसे अच्छी तरह कुचल कर चबाया और पीसा न जा सके वह मनुष्यके लिए कदापि खाद्य नहीं हो सकता। मांसमें जो रेशे होते हैं वे भी ऐसे ही होते हैं और फलत वह खाये जानेके योग्य नहीं होता। प्रश्न हो सकता है कि जो पदार्थ मनुष्यके खाने और पचाने योग्य नहीं है उसके खानेकी प्रथा कब, क्यों और कैसे चली? इसका उत्तर इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि बहुत प्राचीन कालमें बहुत ही विवश होने पर कुछ लोगोंने मांस खाना आरम्भ किया होगा और तभीसे वह खाद्य पदार्थोंमें गिना जाने लगा और वास्तवमें पराकाष्ठाकी विवशताके अतिरिक्त मांस सरीखे घृणित पदार्थके खानेका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। बहुत सम्भव है कि मनुष्यको मांस खानेका कुछ शिक्षा हिंसक पशुओं आदिसे भी मिली हो। अब जब कि मनुष्यको संसारके कोने कोनेमें उत्तम वानस्पत्य और स्वाभाविक भोजन मिल सकता है तो कोई कारण नहीं है कि मनुष्य ऐसे अस्वाभाविक और हानिकारक पदार्थका खाना बराबर जारी रक्खे। मांसके अस्वाभाविक भोजन होनेका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि कभी कोई बालक या वयस्क जिसने कभी मांस न खाया हो पहले पहल बिना बहुत अधिक अरुचि प्रकट किये कभी उसे खाना आरम्भ नहीं कर सकता। मांस खानेका आरम्भ अरुचिको दबाकर अपनी प्रकृति और इच्छाके विरुद्ध करना पड़ता है। मांस खाना मनुष्यके लिए कितना अधिक हानिकारक है, इसके प्रमाण-स्वरूप यदि बड़े बड़े डाक्टरोंकी सम्मतियाँ एकत्र की जायँ तो शायद बहुत बड़ा पोथा बन जायगा। बड़े बड़े वैज्ञानिकोंने रासायनिक परीक्षासे यह बात सिद्ध की है कि मांसमें शरीरको हानि पहुँचानेवाले द्रव्य तो बहुतसे होते हैं, पर कोई ऐसा पौष्टिक द्रव्य नहीं होता जो हमें वनस्पति-जन्य खाद्य पदार्थोंमें न मिलता हो। सब प्रकारके अन्नोंमें पौष्टिक द्रव्य मांसकी अपेक्षा कहीं अधिक होते हैं। परीक्षाद्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शाकाहारी लोग मांस

शरीरोंकी अपेक्षा अधिक बलवान्, अधिक परिश्रमी, अधिक शान्त और अधिक विचारवान् होते हैं। ससारमें अब तक जितने बड़े बड़े महात्मा, दार्शनिक, ऋषि और विद्वान् हो गये हैं उनमेंसे बहुत ही थोड़े ऐसे निकलेंगे जो मासाहारी हों, और उनमें भी मासके पक्षपातियोंकी सख्या तो और भी कम होगी।

मासमें यदि अन्नकी अपेक्षा कोई विशेषता होती है तो वह उन उत्तेजक द्रव्योंकी अधिकता है, जो प्राय सब प्रकारके मादक द्रव्योंमें हुआ करते हैं। जिस प्रकार मादक द्रव्य हमारे शरीरमें पहुँचकर उसकी सजीवना शक्तिको अपने साथ युद्धमें प्रवृत्त करके उसे चचल बना देते हैं, ठीक उसी प्रकारका प्रभाव हमारे शरीर पर मास भक्षणका भी होता है। इसलिए मास भी हमारे लिए उतना ही हानिकारक है जितना कोई मादक द्रव्य। यदि मांसमें बल बढानेकी शक्ति होती तो मासाहारी शेरको शाकाहारी अरने भैंसे या ओरग ऊटगसे अपनी दुर्दशा करानेकी नौबत न आती। जिस माससे मनुष्यको क्षयी, कण्ठमाला, पक्षाघात तथा और तरह तरहके सैकड़ों भयकर फोड़े हो सकते और होते हैं वह मास क्या कभी बलवर्द्धक अथवा कमसे कम खाद्य ही हो सकता है? हृद्रोगोंकी उत्पत्तिकी भी, मास खानेमें बहुत अधिक सम्भावना हुआ करती है। यूरिक एसिड नामका एक विषैला द्रव्य होता है जो मूत्रके साथ मनुष्यके शरीरके बाहर निकलता है। मांस खानेवालोंके मूत्रमें यह एसिड बढकर दुगुना और तिगुना तक हो जाता है, जिससे सिद्ध होता है कि मास खानेका गुरदे पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। मास खानेसे रक्त सचालनमे भी बड़ी बाधा पहुँचाती है। यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें आजकल कैन्सर नामका एक बहुत भयकर फोड़ा फैल रहा है जिससे लाखो मनुष्योंके प्राण जाते हैं। बहुत बड़े बड़े डाक्टरोंने परीक्षा और अनुभवसे यही निश्चित किया है कि इस भयकर फोड़ेका कारण मासाहारके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वहाँ इस भयकर फोड़ेको रोकनेके लिए मासकी बिक्री तक बन्द करनेके लिए आन्दोलन हो रहा है। तात्पर्य यह कि मनुष्यके लिये मास खाना अत्यन्त हानिकर और अनुचित है। मास खाना मानों प्राकृतिक नियमोका उल्लघन करना है। मासमे अनेक प्रकारके कीड़े होते हैं जो उसके साथ हमारे पेटमें उतर जाते हैं और हमारा स्वास्थ्य नष्ट कर देते हैं। इसके अतिरिक्त स्वय मास पूरी तरहसे

नहीं पचता और उसका बहुतसा अश पेटमें ही पड़ा पड़ा सड़ता है। अत जो लोग सदा नीरोग और हृष्ट पुष्ट बने रहकर अपनी पूरी आयु भोगना चाहते हों, उन्हें अन्न फल आदि सात्त्विक, स्वाभाविक और श्रेष्ठ पदार्थोंको छोड़कर मांस आदि तामसिक, अस्वाभाविक और निकृष्ट पदार्थ कभी न खाने चाहिए।

मांस आदिके बाद शरीरके लिए बहुत ही हानिकारक पर प्रचलित द्रव्योंमें दूसरा नंबर मादक द्रव्योंका है। शरीर पर मादक द्रव्योंका जो दुष्परिणाम होता है वह मांसके दुष्परिणामोंसे भी कहीं अधिक स्पष्ट और व्यक्त है, अत उसके लिए बहुत अधिक विवेचनाकी आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्यको यह समझानेकी आवश्यकता पड़े कि मादक द्रव्योंके व्यवहारसे मनुष्यकी आर्थिक, शारीरिक, धार्मिक और नैतिक आदि सभी दृष्टियोंसे बहुत हानि होती है, उससे बढ़कर अभागा और दुर्बुद्धि शायद ही कोई होगा। मादक द्रव्योंका व्यवहार करना अपने शरीर, बुद्धि और बल आदिको जान बूझ कर, बेतरह तंग करना नहीं है तो और क्या है? जिस मनुष्यका मस्तिष्क शराब या गाँजेके प्रभावमें चकराया हुआ होगा वह कौनसी उत्तम बात सोचने समझने अथवा करनेमें समर्थ हो सकता है? किसी अफीमची या शराबीसे कौनसे पुरुषार्थकी आशा की जा सकती है? तात्पर्य यह कि मादक द्रव्योंसे संसारका सब प्रकारका अपकार ही होता है, उपकार कुछ भी नहीं होता। बहुधा लोग जब कुछ अधिक परिश्रम करनेके कारण थक जाते हैं तब उस समय थकावट उतारनेके लिए किसी प्रकारके मादक द्रव्यका व्यवहार करते हैं। पर नशेके उतारके समय कोई उनकी थकावटके उतारका हाल पूछे। उस समय केवल उनकी थकावट ही नहीं बढ़ जाती, बल्कि उनके शरीरमें बहुत कुछ बेचैनी भी उत्पन्न हो जाती है। थकावट दूर करनेके लिए मादक द्रव्योंका व्यवहार करना वैसा ही है, जैसा कि जलतीहुई आग बुझानेके लिए उस पर घी या तेल छोड़ना। जो थकावट केवल थोड़ासा ठंडा जल पीने और कुछ देर तक खुली हवामें टहलनेसे ही दूर हो सकती है, उसे उतारनेके लिए किसी प्रकारके मादक पदार्थका सेवन करना मूर्खता ही है। एक गिलास शराब पी लेनेके उपरान्त दूसरा गिलास पीनेकी इच्छा होगी और उसके बाद बोतल खाली करनेकी नौबत आवेगी। यहाँतक कि अन्तमें नशेका भूत उसे मनुष्यत्वसे एकदम गिरा

देगा। कुछ लोग केवल संग साथके विचारसे ही मादक द्रव्योंका व्यवहार करने लगते हैं, पर केवल सगसाथके विचारसे ही ऐसे पदार्थोंका व्यवहार करना—जो हमारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके नाशक हों, जिनसे हमारे जीवनकी उपयोगिताका नाश हो और जिनसे हमारे कर्त्तव्योंमें बाधा पड़े—बड़ी भारी मूर्खता है। कुछ लोग कोई बड़ा काम करनेसे पहले केवल इसी लिए कोई नशा खा या पी लेते हैं कि उसकी सहायतासे उनके शरीरमें खूब फुरती आ जायगी और वे उस कामको शीघ्रता और उत्तमतासे कर सकेंगे। पर इस बातका विश्वास रखना चाहिए कि प्रत्येक कार्य जितनी शीघ्रता और उत्तमतासे स्वयं प्रकृति, बिना किसी दूसरी शक्तिकी सहायताके कर सकती है, उतनी शीघ्रता और उत्तमतासे किसी दूसरे पदार्थकी सहायतासे और विशेषतः मादक सरीखे नाशक पदार्थोंकी सहायतासे कदापि नहीं कर सकती। इन सब बातोंके अतिरिक्त नशीली चीजोंसे तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। शराब पीनेवालोंका जिगर सड़ जाता है, गाँजा या चरस आदि पीनेवाले पागल हो जाते हैं, अफीमचियोंकी आँतें बेकाम हो जाती हैं और भाँगका आँखों पर बहुत ही नाशक प्रभाव पड़ता है। संसारके जितने मादक पदार्थ हैं, वे सब विष हैं और विष सदा हमारे शरीरके शत्रु ही प्रमाणित होंगे; उनसे किसी प्रकारके हित या कल्याणकी आशा रखना व्यर्थ है।

खान पानके विचारके अन्तर्गत मांस और मादक पदार्थ आदि छोड़ देनेके अतिरिक्त और भी अनेक बातें हैं जिनका ध्यान रखना स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए बहुत आवश्यक है। सबसे पहली बात तो यह है कि जहाँ तक हो सके मनुष्यको सादा, सूखा और हलका भोजन करना चाहिए। इस सम्बन्धमें यह बात सबसे अधिक ध्यान रखने योग्य है कि हमारे शारीरिक संगठनमें उन्हीं पदार्थोंसे सहायता मिलती है जिन्हें हम अच्छी तरह पचा लेते हैं। शेष सब पदार्थ हम चाहे उन्हें कितना ही अधिक पौष्टिक क्यों न समझें हमें कभी कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते। वे तो एक मार्गसे हमारे शरीरमें केवल प्रवेश करते हैं और दूसरे मार्गसे निकल जाते हैं, हमारे शारीरिक संगठनमें उनसे कोई सहायता नहीं मिलती। दस पांच सेर दूधके केवल पीलेनेसे उतना

लाभ नहीं हो सकता, जितना पाव भर या आध सेर दूधके पच जानेसे होता है। अतः केवल बल-वृद्धि आदिके विचारसे तरह तरहके पौष्टिक पदार्थोंको बराबर उदरस्थ करते रहनेका फल उल्टा ही होता है। हल्के भोजनका विधान इसलिए किया जाता है कि गरिष्ठ भोजनसे पाचन-शक्तिका नाश होता है और अग्नि मन्द पड़ जाती है। पूरियों और पक्वानोंकी अपेक्षा रोटियाँ सहजमें पच जाती हैं और इसी लिए उनसे हमें अधिक लाभ भी पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त भोजन रूखा भी होना चाहिए। घी, मक्खन, पक्वान्न और हलुए आदिसे भी पाचन शक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है। यही कारण है कि नित्य हलुआ-पूरी खानेवाले भोजनके समय एक बारमें चार पाँच पूरियोंसे अधिक नहीं खा सकते, पर सूखी रोटियाँ अथवा भूने हुए दाने खानेवाले उनसे चौगुना और पचगुना भोजन कर जाते हैं। उनके भोजनकी केवल मात्रा ही नहीं बढ़ जाती, बल्कि उससे होनेवाले लाभका मान भी बहुत कुछ बढ़ जाता है। रूखा भोजन करनेवाले लोग सदा खूब नीरोग और बलिष्ठ रहते हैं और तर माल खानेवाले दुर्बल होते हैं। तरह तरहके मसालों आदिका भी कभी व्यवहार न करना चाहिए, क्योंकि उनके संयोगसे खाद्य पदार्थोंके स्वाभाविक गुणोंका नाश होता है। जहाँ तक हो सके ऐसे पदार्थ खाने चाहिए जो अपने वास्तविक स्वरूपमें हों अथवा जिनमें बहुत ही थोड़ा परिवर्तन हुआ हो। किसी पदार्थके प्राकृतिक स्वरूपमें जितना ही परिवर्तन किया जायगा उसके गुणोंका उतना ही अधिक नाश भी होगा। दरदरे पीसे हुए गेहूँका व्यवहार करना लोग आजकलकी सभ्यताके जमानेमें भले ही हास्यास्पद समझें, पर इस बातसे कोई समझदार आदमी इनकार नहीं कर सकता कि आटा जितना ही अधिक पीसकर महीन किया और छाना जाता है वह उतना ही गरिष्ठ भी होता जाता है। बिना छाने हुए आटेकी अपेक्षा छाने हुए आटेकी रोटी और छाने हुए आटेकी रोटीकी अपेक्षा बढ़िया मैदेकी पूरी कहीं अधिक गरिष्ठ और हानि-कारक होती है। इसी प्रकार दूध जितना औटाया जायगा वह भी उतना ही गरिष्ठ होता जायगा। पदार्थोंका प्राकृतिक रूप ज्यों ज्यों बदलते जाइएगा त्यों त्यों उनके प्राकृतिक गुणोंका भी नाश ही होता जायगा। मनुष्यके लिए दूध तथा फलोंसे बढ़कर बलकारक और स्वास्थ्यप्रद और कोई पदार्थ हो ही नहीं सकता। पर जो लोग सदा दूध और फलों पर ही न रह सकते हों और दूसरे पदार्थों पर भी

जिनका मन चलता हो उन्हें इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उनका भोजन जहाँ तक हो सके सादा, हलका और रूखा हो। मनुष्यके स्वाभाविक भोजनकी सबसे अच्छी पहचान यह है कि किसी पदार्थको स्वाभाविक स्थिति या स्वरूपमें देखकर मनुष्यके मनमें उसके खानेकी इच्छा उत्पन्न हो। बढ़िया सेब, नाशपाती, अमरूद, अंगूर, सन्तरे या दूध आदि पर तो मनुष्यका मन सहजहीमें चल जाता है, पर मांसके लोथड़े रक्खे हुए देखकर मनुष्यको सदा घृणा ही होती है। उपर्युक्त और अनुपयुक्त भोजनकी यही सबसे अच्छी पहचान है। तो भी आजकलके जमानेमें मनुष्यमात्रके लिए केवल फल खाकर और दूध पीकर रहना प्रायः असम्भव है। मनुष्यका स्वाभाविक भोजन अन्न भी है, क्योंकि यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो वह भी फलकी कोटिमें ही आ जायगा। अतः मनुष्यको फलोंके साथ अन्न भी खाना चाहिए। पर यह अन्न जहाँ तक हो सके बहुत ही कम विकृतरूपमें आया हो और उसमें दूसरी चीजोंका बहुत ही कम योग हो, क्योंकि मनुष्यको नीरोग और बलिष्ठ बनाये रखनेमें सबसे अधिक सहायता ऐसे ही पदार्थोंसे मिल सकती है। छौंके बघारे और तले हुए पदार्थ तो हमारे शरीरके लिए किसी न किसी अंशमें हानिकारक ही होंगे।

खान पानके सम्बन्धमें दूसरी सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि मनुष्यको जब तक खूब तेज और खुलकर भूख न लगे तब तक कभी कुछ न खाना चाहिए। यह बात सब लोग स्वीकार करेंगे कि अनावश्यक रूपसे या अनिच्छापूर्वक किया हुआ काम सदा हानिकारक ही होता है। भोजनके समय भी इस सिद्धान्तकी सत्यता भूल न जानी चाहिए। भूखका अस्तित्व हमें बतलाता है कि हमारे शरीरको पोषक द्रव्योंकी आवश्यकता है पर उसका अभाव यही सूचित करता है कि अभी शरीरमें यथेष्ट पोषक द्रव्य उपस्थित हैं। खूब तेज भूख लगने पर हम जो कुछ खायँगे वह हम तुरन्त पचा सकेंगे और इसी लिए उसके द्वारा हमारे शरीरका बल बढ़ेगा। पर यदि हम बिना भूखके ही जबरदस्ती कुछ खा लेंगे तो उससे हमारी पाचन शक्ति पर आवश्यकतासे अधिक बोझ पड़ जायगा और उसके परिणामस्वरूप हमारे शारीरिक बलका नाश ही होगा। खूब तेज भूख लगने पर हम जो कुछ खायँगे वह हमें स्वादिष्ट भी जान पड़ेगा और

उसीसे हमारे शरीरका पोषण भी होगा। केवल दैनिकचर्य्या समझकर खाया हुआ भोजन न तो खानेमें ही स्वादिष्ट मालूम होगा और न हमारे तनमें ही लगेगा। उलटे उससे हमारे शरीरको हानि ही पहुँचती है और तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। दूसरी बात यह है कि जब थोड़ीसी भूख बाकी रह जाय तभी भोजनसे हाथ खींच लेना चाहिए; खूब ठूँस कर भोजन करना और नाक तक भर लेना ही शरीरकी सारी खराबियोंकी जड़ है। यदि भोजन करनेके समय कोई पदार्थ बहुत ही चरपरा या बढ़िया होनेके कारण स्वादिष्ट जान पड़े और उसे अधिक खानेकी अच्छा हो तो कदापि उस इच्छाके फेरमें न पड़ना चाहिए और तुरन्त भोजनसे हाथ खींच लेना चाहिए। ऐसे अवसरके लिए एक विद्वान्का आदेश है कि 'अपने कल्याणके लिये अपनी इच्छा और रसनाको वशमें रक्खो; यह प्रमाणित करो कि तुममे इतना नैतिक बल है कि तुम तुच्छ वासनाओंके फेरमें नहीं पड़ सकते।' बहुतसे लोग पारलौकिक स्वर्गकी कामनासे बड़े बड़े व्रत करते और इन्द्रियदमनका अभ्यास करते हैं; तुम इहलौकिक स्वर्गको इच्छासे ही पेट्र बनना छोड़ दो। इस पेट्रपनसे छुटकारा पानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम सदा सादा और रूखा भोजन करें। पहले तो सादे और रूखे भोजन पर तुम्हारा मन ही नहीं चलेगा; परन्तु जब कुछ दिनोंमें तुम अभ्यस्त होकर उसके गुण जान लोगे तब अच्छीसे अच्छी चीज पर भी तुम्हारा मन नहीं चलेगा। साधारण फल खाने या दूध पीनेके कारण कभी मनुष्यको अनपच नहीं होता और न खट्टे डकार ही आते हैं। उन दोषोंको उत्पन्न करनेका गुण पूरी, हलुए और मिठाईमें ही है। खान-पानके सम्बन्धमें प्रकृतिकी आज्ञाओंका पालन करो। खूब तेज भूख लगने पर सादा भोजन उसी समय तक करो जब तक कि वह तुम्हें खूब स्वादिष्ट जान पड़े, तुम्हें कभी कोई शारीरिक व्यथा न होगी।

जल और वायु।

जीवमात्रको अपने जीवनकालमे जिस पदार्थकी जितनी अधिक आवश्यकता पड़ती है प्रकृतिने वह पदार्थ उतनी ही अधिक मात्रामे उत्पन्न और सग्रह करके पहलेसे ही रख दिया है। जीवमात्रके लिए बहुत अधिक मात्रामें और परम आवश्यक वायु होती है। यह वायु संसारमें सब पदार्थोंसे अधिक मानमें है और विना किसी प्रकारके प्रयास या व्ययके सब जगह मिल सकती है। यही नहीं बल्कि प्रकृतिने ऐसी योजना कर रक्खी है कि वह छोटे, बड़े, अरक्षित, सुरक्षित, सभी स्थानोंमें आपसे आप पहुँच जाती है। प्रत्येक जीवको कुछ न कुछ वायुकी आवश्यकता होती है, और यदि कोई विशेष प्रतिवन्ध न हो तो उसके लिए प्रत्येक स्थानमें वायु पहुँच भी जाती है। परम उपयोगिता और आवश्यकताके विचारसे सांसारिक पदार्थोंमें दूसरा स्थान जलका है। हजारों ऐसे जीवोंके नाम वतलाये जा सकते हैं, जो हजारों भिन्न भिन्न पदार्थ खाते हैं, पर वायुके अतिरिक्त यदि ससारमे कोई ऐसी चीज है, जिसकी आवश्यक्ता उन हजारों जीवोंको पड़ती है तो वह जल ही है। सृष्टिमें जहाँ तहाँ जलकी अधिकता इसी आवश्यक्ताकी पूर्तिके लिए है।

जिस वायु और जलकी संसारको इतनी अधिक आवश्यक्ता हो, उस वायु और जल्मे अनन्त गुणोंका होना केवल सहज और स्वाभाविक ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है। वायु और जलमें हमारे यहाँ ईश्वरका वास माना गया है और वास्तवमें इन्हीं दोनों पदार्थोंमें सबसे अधिक संजीवनी शक्ति है। जेठ असाढ़की धूपमें दोचार कोस चलने या दिनभर बहुत अधिक परिश्रम करनेके उपरान्त जितनी शान्ति एक गिलास ठंडे जल और ठंडी हवाके दस पाँच झकोरोंसे होती है उतनी शान्ति, उतना सन्तोष, उतना सुख संसारके और किसी पदार्थसे सम्भावित नहीं। यदि अधिक सुख और अधिक सन्तोष मिल सकता है तो केवल अधिक जल या अधिक वायुसे ही मिल सकता है। कपड़े उतार दीजिए और शरीरमें ठंढी हवा लगने दीजिए, आपके सारे कष्ट मिट जायँगे और मन प्रफुल्लित हो जायगा। बढ़िया ठंढे जलसे स्नान कर डालिए, सारी थकावट दूर हो जायगी और शरीर हलका हो जायगा। उस समय आप भी हमारी तरह कहने

रखेंगे कि ऐसे सुन्दर पदार्थोंसे लाभ उठानेकी अपेक्षा जो लोग और तरहके दूषित, निन्दनीय और हानिकारक उपाय करते हैं, वे महामूर्ख हैं ।

पर तो भी संसारमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो ठंढी हवा और ठंढे जलको हौआ समझते हों,—जिन्हें ठंढी हवा और ठंढे जलमें बड़े बड़े दाँत दिखाई देते हों । खुली हवामें रहने और खुले जलमें स्नान करनेसे जितने लाभ होते हैं उनका वर्णन नहीं हो सकता । पाश्चात्य विद्वानोंने तो उनकी उपयोगि-ताका यहाँतक पता लगा लिया है कि अन्तमें उन्हें जल-चिकित्सा और वायु-चिकित्साको एक निश्चित और नियमित विज्ञानका रूप देना पड़ा है । संसारकी प्राचीन जातियोंने भी अपने अपने समयमें आवश्यकतानुसार उनके लाभ समझ लिए थे और उनकी उपयोगिता सिद्ध कर दी थी । ब्राह्म मुहूर्तमें—जिस समय-की वायु सबसे अधिक शुद्ध होती है—उठना, पास या दूरकी नदीमें स्नान करना और खुली हवामें बैठ कर ईश्वराराधन करना, प्राचीन आर्योंका सर्वप्रधान कर्त्तव्य होता था । आजतक उनकी बहुतसी सन्तानें उस कर्त्तव्यका बहुतसे अंशोंमें पालन करती ही हैं । मिश्र तथा यूनानके प्राचीन निवासी भी इन प्राकृ-तिक और स्वास्थ्यप्रद आवश्यकताओंको बहुत अच्छी तरह समझते थे । वहाँके प्रत्येक नगरमें बढ़िया बढ़िया स्नानागार होते थे जिनमेंसे अधिकांशके व्यय-निर्वाहके लिए सर्वसाधारण पर कर लगाया जाता था । दक्षिण युरोपमें इस प्रकारके स्नानागार ईसासे पाँच छः सौ वर्ष पहले तक हुआ करते थे । रोमके प्राचीन निवासियोंने अपने उन्नति-कालमें इसी प्रकारके अनेक प्रबन्ध किये थे । आजतक संसारमें खुले जलमें तैरने अथवा खुली हवामें टहलनेसे बढ़कर और कोई व्यायाम लाभदायक प्रमाणित नहीं हुआ । इन दोनोंकी श्रेष्ठताका मुख्य कारण जल और वायुकी ही श्रेष्ठता है, हमारे शरीर-संचालनका इसमें कोई निहोरा नहीं है ।

संसारकी सारी गन्दगीका नाश या तो जलसे होता है और या वायुसे । सूर्यके प्रकाशसे भी उसके नष्ट होनेमें बहुत सहायता मिलती है, पर गन्दगी दूर करनेवाले पदार्थोंमें उसका नंबर तीसरा ही है । मैले कपड़े या स्थान आदि धोनेके लिए जलका ही व्यवहार होता है । यहाँ तक कि हमारे शरीरके भीतरकी

गन्दगी भी जलसे ही नष्ट होती है। हर तरहकी बेचैनी और घबराहट दूर करनेमें जल पीनेसे ही सहायता मिलती है। शरीरके किसी कटे हुए स्थान पर पानी डालने या गीला कपडा बाँधनेसे ही आराम मिलता है, और यहाँतक कि फोड़े फुंसियो आदिमें भी गीला कपडा बाँधना ही लाभदायक होता है। पाश्चात्य जल-चिकित्सक तो सारे रोगोंकी चिकित्सा जलके अनेक प्रकारके प्रयोग से ही करते हैं। ऐसे उपयोगी पदार्थसे कभी किसी दशामें डरनेका कोई कारण नहीं है। आरोग्यताकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको हर एक चौबीस घंटेमें यदि सम्भव हो तो दो बार और नहीं तो कमसे कम एक बार अवश्य खुले जलमें स्नान करना चाहिए और यथासाध्य बहुतसा स्वच्छ और ताजा जल पीना चाहिए। स्नान करनेसे सारे शरीरके रोमकूप खुल और साफ हो जाते हैं और उनमेंसे शरीरका बहुतसा विकार अनायास ही निकल जाता है। जल पीनेसे भी प्रायः यही लाभ होता है; बल्कि कुछ अंशोंमें उससे होनेवाला लाभ विशेष होता है; क्योंकि पेटमें उतारा हुआ जल पेट और पेड़ूके बहुतसे विकारोंको भी निकाल बाहर करता है।

वायु और रोग।

गन्दे स्वच्छ और अधिक जलके अभावमें उसका बहुतसा काम ठंढी, स्वच्छ और अधिक वायुसे भी निकल जाता है। प्रायः सभी देशोंमें वर्षके अधिकांशमें ठंढी ही हवा चलती है, गरम हवा कम। बहुत गरम देशोंमे भी कमसे कम सबेरे और सन्ध्याके समय चलनेवाली हवा तो अवश्य ही ठंढी होती है। ठंढी हवामे गहरी साँस लेनेसे हमारे फेफड़ोंके सारे विकारोंका नाश हो जाता है। यह बात सभी लोग जानते हैं कि गन्दी और थोडी हवाके कारण मनुष्यको अनेक प्रकारके रोग हो जाते हैं और उन रोगोंमे क्षय प्रधान है। स्वच्छ और ठंढी वायुके यथेष्ट सेवनसे कमसे कम श्वास और फेफड़े-सम्बन्धी सभी रोग बहुत सहजमें नष्ट हो जाते हैं। रोगियो और चिकित्सकोंकी इतनी अधिकता होने पर भी आजकल रोगोंके कारणोंका किसीको ठीक ठीक पता नहीं चलता। एक जुकामको ही लीजिए। सब लोग समझते हैं कि ठंढी हवा लगनेसे ही जुकाम हो जाता है; अथवा जुकामका कारण किसी न किसी प्रकारकी

ठटक है। सालमें कमसे कम दो तीन बार तो सभीको जुकाम होता है, पर बहुतसे लोगोंको हर महीने भी जुकाम हो जाया करता है। यदि कहीं जुकाम बिगड़ गया तो बनफशा या इसी प्रकारका और कोई दवा पीते पीते नाकमें दम आ जाता है। लोग बरसात या जाड़ेके दिनोंमें सब खिड़कियों और किवाड़ोंको इस प्रकार बन्द कर लेते हैं कि उनमेंसे जरासी भी हवा न आ सके, और उस कमरेकी गरम हवामें रातभर बन्द रहते हैं। यदि आप किसीसे पूछिए कि भाई तुम्हें जुकाम कैसे हो गया? तो उत्तर मिलता है कि रातको सोए सोए बहुत गरमी मालूम हुई, जरा खिड़की खोला, उसके खोलते ही ठंडा हवाका झकोरा लगा और जुकाम हो गया। अथवा इसी प्रकार जहाँ और कहीं थोड़ीसी ठंडक मिली कि लोगोंको जुकाम हो गया। पाश्चात्य देशोंके विद्वानोंने तो अन्य रोगोंके कीटाणुओंकी तरह जुकामके भी कीटाणु हो मान लिये हैं और उन कीटाणुओंके नाशके लिए ही जुकामके रोगियोंको तरह तरहकी ओषधियाँ दी जाती हैं। पर कोई बुद्धिमान् इस बातका जरा भी विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि जुकाम उन्हीं लोगोंको होता है जो ठंडी हवाको हौआ समझकर उससे डरते हैं, और जो लोग सदा ठंडा हवामें घूमते फिरते हैं उन्हें कभी जुकाम होता ही नहीं। जुकामके सारे कांड मैदाना और गरम स्थानोंमें ही फैलते हैं ठंड, बरफीले या पहाड़ी स्थानों पर उनका कोई दाल नहीं गलती। जो लोग उत्तरी ध्रुव तक हो आये हैं उनका कथन है कि वहाँके देशोंमें जुकाम या इसी प्रकारका और कोई रोग नहीं होता। यही नहीं बल्कि दिनरात ठंडी हवा और बरफमें रहनेवाले वहाँके निवासी फेफड़ेकी किसी बीमारीका नाम भी नहीं जानते। ये सब रोग उन्हीं लोगोंको होते हैं जो ठंडी हवासे डरते और घबराते हैं। स्वच्छ, खुली और ठंडी हवाका सेवन करनेवालोंसे स्वयं उन रोगोंको डर लगता रहता है।

गरमीके दिनोंमें मच्छड़ोंसे बचनेके लिए घर घर मसहरियाँ टाँगी जाती हैं। उन मसहरियोंमें बहुतसे रुपये भी खर्च होते हैं। इस देशमें तो मसहरियोंका व्यवहार केवल मच्छड़ोंके डंकसे बचनेके लिए ही होता है, पर पाश्चात्य देशोंमें उन रोगोंसे बचनेके लिए भी होता है जो मच्छड़ोंके द्वारा भयंकर रूपसे फैलते हैं। पर लाख उपाय करने पर भी मच्छड़ काटते ही हैं और रोग फैलते ही हैं।

पर क्या मच्छड़ोके डक और उनके द्वारा फैलनेवाले रोगोसे डरनेवाले लोगोंने कभी यह किस्सा भी सुना है कि एक बार मच्छडोने जाकर अल्लाह मियाँसे फरियाद की थी कि सरकार, हवा हमे बहुत दिक करती है, कहीं ठहरने नहीं देती। अल्लाह मियॅाने जब हवाको बुलवाया तो मच्छड़ वहाँसे भी भाग गये। हवाके वहाँसे चले जाने पर मच्छड़ फिर रोते हुए अल्लाह मियॉके पास पहुँचे। उस बार अल्लाह मियॉने मच्छडोंको बहुत फटकारा और कहा कि फैसला तभी हो सकता है जब मुद्दई और मुद्दालेह दोनो मौजूद हों; जब तुम हवाके जाने पर यहाँ ठहरते ही नहीं, तब फिर मैं तुम्हारा फैसला कैसे करूँ? यदि मच्छडोंके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे छुटकारा पानेके लिए प्रयत्न करनेवाले रोगियों और डाक्टरों तथा मच्छडोके डकसे बचनेकी इच्छा रखनेवाले शौकीनोंने यह किस्सा न सुना हो, तो अब सुन ले और यदि पहले भी कभी सुना हो तो अब समझ ले कि मच्छडोको दूर करनेका सबसे सहज उपाय है—बढिया, ठढी और तेज हवा। मकान ऐसे बनवाइए जिनमे हर सब तरफसे बढ़िया हवा आती हो। फिर क्या मजाल जो मच्छड़ आपको काटें या दूसरोंके रोग लगकर आपको रोगी करें।

बारहो महीने जुकाम और खाँसी आदि रोगोंसे पीड़ित रहनेवाले लोग यदि अधिक समय तक खुली और ठंढी हवामें रहनेका अभ्यास करें तो बहुत सहजमें और सदाके लिए उन रोगोसे उनका छुटकारा हो जाय। ठंढी हवा एक ऐसा पौष्टिक द्रव्य है, जो हमारे फेफडों आदिको ऐसी दशाओंमे भी बल प्रदान करता है जब कि ससारभरकी सारी पौष्टिक ओषधियाँ व्यर्थ सिद्ध होती हैं। ज्योंही तुम्हें गले या फेफडे आदिमें किसी तरहकी शिकायत उठती हुई जान पडे त्योंही ठढी और साफ हवाका खूब सेवन करो, उस शिकायतका नाम भी न रह जायगा। बात यह है कि जिस स्थान पर किसी प्राकृतिक तत्त्वकी आवश्यकता होती है वहाँ औषधों अथवा इसी प्रकारके और किसी पदार्थसे काम नहीं चल सकता। जब हमें बहुत तेज धूप या आँच लगती है तब हमारी त्वचा किसी प्रकारका मरहम या तेल नहीं माँगती, बल्कि वह वहाँसे हटकर केवल ठंढे स्थानमें जाना चाहती है। दूसरे पदार्थसे उसका कष्ट दूर ही नहीं हो सकता। इस प्रकार जो रोग शुद्ध, स्वच्छ और अधिक वायुके अभावके कारण होते हैं, क्या गोलियाँ, पुड़ियाँ और

ग्रा'शियाँ उन्हें दूर करनेमें कभी समर्थ हो सकती है? कदापि नहीं। उनकी आवश्यकता तो केवल स्वच्छ और अधिक हवा ही पूरी कर सकती है।

पाचनसम्बन्धी दोषोंको दूर करनेके लिए भी स्वच्छ वायु रामबाण ही है। इसका प्रमाण आपको सारे ससारमे मिलेगा। जो लोग विषुवत् रेखासे जितनी ही दूर रहते हैं उनकी पाचन शक्ति उतनी ही अधिक होती है। उत्तरी ध्रुवमें रहने वाले एस्क्विमो लोग इतना अधिक भोजन पचाते हैं जितना छः हिन्दू भी नहीं पचा सकते। जो लोग सदा खुली हवामें रहते हैं, उनकी शारीरिक और पाचन शक्ति बिना किसी प्रकारके परिश्रम या व्यायामके ही बढ जाती है। खुली हवामे साँस लेनेसे रक्त खूब शुद्ध होता है और उसका संचार भी बढ जाता है। इस शुद्धि और सचारका शरीरके सभी अगों पर बहुत ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। जब डाक्टर लोग औषध आदि देते देते थक जाते हैं और रोगीकी दशा किसी प्रकार नहीं सुधरती तब रोगियोंको वे लोग पहाड या समुद्र तट पर जानेकी सम्मति इसी लिए देते हैं। जिन लोगोंको अनपच हो गया हो वे और दिनोंमे रात भर खुली हवामे सोकर तथा जाडेके दिनोंमें अधखुली खिडकियोंके पास सोकर ही अपने रोगसे छुटकारा पा सकते हैं। घी, मक्खन आदि अथवा इसी प्रकारके अन्य ऐसे पदार्थ जिनमें नाइट्रोजन नहीं होता, ठढी और सहज वायुकी सहायतासे बहुत ही सहजमें पचाये जा सकते हैं।

ठढी और स्वच्छ वायुमे अनिद्र रोगको दूर करनेकी विलक्षण शक्ति है। बहुत ठंडे प्रदेशोंमें जाडा आते ही बहुत से जानवर किसी एकान्त स्थानमें चले जाते हैं और बसन्त ऋतुके आगमन तक बिना किसी प्रकारका आहार किये महीनों सोते या ऊँघते रहते हैं। स्वय हम सब लोगोंको और दिनोंकी अपेक्षा जाडेमें कहीं अच्छी और अधिक नींद आती है। इसका कारण यही है कि जाडेमें हवा ठढी और अधिक होती है। डा० फ्रान्क्लिनकी सम्मतिमे ठढी हवा नींद आनेकी बहुत अच्छी दवा है। आप लिखते हैं,—

—"गरमियोंमें रातके समय जब मैं सोनेके अनेक निरर्थक प्रयत्न कर चुकता हूँ तब उठ कर बैठ जाता हूँ और अपने सामनेकी खिड़की खोल कर प्राय पन्द्रह मिनट तक नगे बदन हवाके रुख पर बैठा रहता हूँ। उस समय

नींद न आनेका चाहे जो कारण हो वह दूर हो जाता है और उसके बाद जब मैं लेटता हूँ तब मुझे कमसे कम दो तीन घंटोंके लिए खूब गहरी नींद आ जाती है।"

यदि नींद न आने पर स्वच्छ वायुका सेवन करनेके समय थोडी हल्की कसरत भी कर ली जाय तो उससे और भी अधिक लाभ होता है। सोनेके समय रक्तकी यथेष्ट रूपसे शुद्धि नहीं होती, इसी लिए बहुधा सोए सोए नींद खुल जाया करता है। यदि सन्ध्याके समय थोडा सा व्यायाम कर लिया जाय या दो चार मीलका चक्कर लगा लिया जाय तो उस दोषकी सम्भावना नहीं रह जाती और मनुष्य बडे आनन्दसे सारी रात खूब गहरी नींदमें सोया रह सकता है।

वायुसेवन।

पिछले पृष्ठोंमें एक स्थान पर यह बतलाया जा चुका है कि शरीरको नीरोग करने और स्वास्थ्य बनाये रखनेमें एक मात्र उपवास ही सहायक नहीं हो सकता, बल्कि उसके लिए स्वच्छ वायु और व्यायाम आदिकी भी आवश्यकता होती है। स्वच्छ वायुके सेवनसे जितने लाभ हो सकते हैं उन सबका वर्णन करना कमसे कम हमारी सामर्थ्यके तो बाहर है। केवल घरोंमें बन्द रहकर रहनेवाले बालकोंकी अपेक्षा गलियो, सडकों और मैदानोंमें चक्कर लगानेवाले बालक और उनकी अपेक्षा सदा खुली हवामें रहनेवाले देहाती बालक कहीं अधिक नीरोग और बलिष्ठ हुआ करते हैं। पालतू (और फलत गन्दी हवामें रहनेवाले) जानवरोंकी अपेक्षा जगली (और फलत साफ हवामें रहनेवाले) जानवर कहीं अधिक बलिष्ठ और फुरतीले हुआ करते हैं। प्राय सभी धर्म्मोंमें नगे पैरों और पैदल चलकर अनेक तीर्थोंका यात्रायें करनेका विधान है, और उस विधानमें भी स्वास्थ्यसम्बन्धी यही परमोपयोगी और लाभदायक सिद्धान्त है। उन यात्राओं पर आजकलका नई रोशनीके लोग भले ही हँसें पर उन्हें भी किसी न किसी रूपमें—कमसे कम किसी बडे मैदानकी ही सही—यात्रा करनेकी अवश्य आवश्यकता होती है, और यदि वे वह यात्रा न करें तो उन्हें उसका दुष्परिणाम भी भोगना पडता है।

वायु-सेवनका सबसे अच्छा समय प्रभात है; क्योंकि उस समय वायु बहुत शुद्ध, स्वच्छ, शीतल, मन्द और अधिक होती है। ऐसे समयमें यदि मनुष्य नित्य दो, चार या पाँच मीलका चक्कर खेतों और मैदानों आदिमें लगाया करे तो उसे कभी किसी डाक्टर, वैद्य या हकीम आदिका मुँह देखनेकी आवश्यकता नहीं रह सकती। उस समय हमारे शरीरको वायुसे जो लाभ पहुँचता है वह तो पहुँचता ही है, इसके अतिरिक्त रातभरकी ओस हमारे पैरोंसे लगकर हमें और भी अधिक लाभ पहुँचाती है। ठंडे देशोंमें रहनेवाले लोगोंको तो यह लाभ अनायास ही हो जाता है; पर जो लोग गरम देशोंमें रहते हैं वे भी सवेरेके समय मैदानों और जंगलोंमें घूमकर पहाड़ों और ठंडे देशोंमें रहनेके लाभ उठा सकते हैं। साँस लेनेसे जो वायु दूषित हो जाती है वह साधारण और शुद्ध वायुकी अपेक्षा कहीं अधिक भारी होती है; और इसी लिए वह प्रायः बन्द और नीचे स्थानों—कोठरियों, दालानों तहखानों और गलियों आदि—में ही रहती है। अतः वायुसेवनके लिए मनुष्यको ऐसे स्थानों पर निकल जाना चाहिए जो बस्तीसे बहुत दूर और ऊँचे हों। पर यह बात बहुत ऊँचे पहाड़ों पर रहनेवालोंके लिए नहीं है; क्योंकि बहुत अधिक ऊँचाई पर वायु स्वयं ही कम और हलकी हो जाती है और साँस लेनेके लिए ही यथेष्ट नहीं होती। वहाँकी वायु तो शरीर और विशेषतः फेफड़ोंके लिए और भी हानिकारक होती है। अतः ऐसे स्थानों पर जहाँतक हो सके, और नीचे ही उतर आना चाहिए। यदि सम्भव हो तो सोनेके लिए बल्कि रहनेके लिए भी—नगरसे दूर किसी ऐसे मैदानमें प्रबन्ध करना चाहिए जहाँ श्वाससे दूषित वायुके पहुँचनेकी सम्भावना न हो और जहाँ यथेष्ट सरदी पड़ती हो। ऐसा प्रबन्ध एक साधारण छोटी सेन्टी झोपड़ी बनाकर भी किया जा सकता है। वहाँ मनुष्य जब चाहे तब सुन्दर स्वच्छ शीतल और पहाड़ोंकी वायुके मुकाबलेकी वायुका सेवन कर सकता है। जिस समय ठंडी वायु न मिल सकती हो और मौसिम बहुत गरम हो उस समय पगके किसी झरने या छोटी नदीके शीतल जलमें ही स्नान कर लेना चाहिए।

इन मैदानों और जंगलोंमें भी मनुष्यके लिए ऐसे कामोंकी कमी नहीं है जिनसे उसका मनोरंजन होनेके साथ ही साथ बहुत कुछ व्यायाम भी हो जाता है।

घूम घूम कर तरह तरहके फल और मेवे आदि खाना और आवश्यकता पड़ने पर उनके पेड़ों पर चढ़ना कम स्वास्थ्यप्रद नहीं है। चतुर और दक्ष मनुष्य मधु-मक्खियोंके छत्तेमेंसे बहुत सा शहद भी जमा कर सकता है। पेड़ों पर चढ़ना एक ऐसी कसरत है जिससे शरीरके अंग-प्रत्यंग पर जोर पड़ता है और शरीर खूब फुरतीला हो जाता है। यह कसरत उन लोगोंके लिए और भी अधिक उपयोगी होती है जो दमे अथवा इसी प्रकारके और किसी रोगसे पीड़ित हों। इसी प्रकार वहाँ और भी अनेक ऐसे काम निराले जा सकते हैं जिनसे मनोविनोद, शारीरिक श्रम और आर्थिक लाभ आदि सभी बातें हो सकती हैं। वहाँ रह कर मनुष्य तरह तरहकी प्राकृतिक शोभायें निरख सकता है, अपना ज्ञान बढ़ा सकता है, रोगोंसे मुक्त हो सकता है, अनेक प्रकारकी बुराइयों और दोषोंसे बच सकता है और अपने मन तथा आत्माको शुद्ध और संस्कृत कर सकता है। यदि मनुष्य सदा ही ऐसा जीवन न व्यतीत कर सकता हो तो उसे कमसे कम सप्ताहमें एक दिन, महीनेमें चार दिन अथवा वर्षमें एक महीने अवश्य ही ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसा जीवन स्वास्थ्यप्रद होनेके अतिरिक्त बड़ा ही सात्त्विक और शुद्ध होता है और उसीमें मनुष्यको वास्तविक और सच्चा सुख मिल सकता है।

नगरमें रहनेवाले बालकोंको आरम्भसे ही ऐसा मनोहर जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास डालना चाहिए। जो बालक इस प्रकार प्राकृतिक शोभाओंको निरखता रहेगा वह बड़े बड़े शहरोंकी गन्दी गलियोंमें घूमनेवाले बालककी अपेक्षा कहीं अधिक नीरोग, बुद्धिमान् और धर्मात्मा होगा। रेलों और जहाजों पर चढ़कर बड़े बड़े नगरों आदिके देखनेमें बहुतसा धन व्यय करनेकी अपेक्षा बहुत ही थोड़े खर्चमें आसपासकी प्राकृतिक शोभायें देखना कहीं अधिक लाभदायक है। हममेंसे अधिकांश लोग ऐसे ही हैं जो सदा अपने व्यापारों और कार्यों आदिमें ही लगे रहकर कूप मंडूक और रोगोंके घर बने रहते हैं। जो जो कृत्य वे सुखी होनेके लिए करते हैं, वे ही कृत्य उन्हें और अधिक दुःखी बनानेके साधन होते हैं। ऐसे लोगोंको यह बात भलीभाँति समझ लेनी चाहिए कि प्रकृतिसे बढ़कर हमें सुखी करनेवाला और कोई पदार्थ संसारमें नहीं है। जो लोग देहातसे चल कर किसी काम धन्धेके लिए शहरोंमें रहते हैं वे कभी कभी छुट्टी लेकर आराम

करनेके लिए अपने देहाती मकानोंमे तो अवश्य पहुँच जाते है, पर नगरमे पडे हुए अभ्यासके कारण वे देहातोमे होनेवाले लाभसे वंचित ही रह जाते हैं। यदि लोग थोडासा भी प्रयत्न करें तो बडी बडी पौष्टिक औषधोंकी अपेक्षा कहीं अधिक पौष्टिक पदार्थोसे बहुत विशेष लाभ उठा सकते हैं। प्राकृतिक शोभाओं आदिके देखने और सुन्दर स्वच्छ वायु सेवन करनेके इतने अधिक लाभ हैं कि एक विद्वान्ने उनसे वंचित रहनेको बडा भारी पाप कहा है।

बहुतसे अभागे लोग स्वच्छ और शीतल वायुसे इतना अधिक डरते हैं कि जब वह स्वयं उनके पास आना चाहती है तब भी वे लोग अपने द्वार बन्द कर लेते हैं। रातके समय आपको नगरोंके अधिकांश मकानोंकी खिडकियाँ और दरवाजे आदि बन्द ही मिलेंगे, चाहे उनके भीतर रहने-वालोंका कितना ही कष्ट क्यों न होता हो। लोग छोटीसी कोठरीके सब किवाडे बन्द कर लेते हैं और लिहाफ या ओढनेके अन्दर मुँह ढँक कर सो रहते हैं। रातभर वे उसी लिहाफ या अधिकसे अधिक कोठरीकी हवामें साँस लेकर गन्दी करते और फिर उसी गन्दी हवामें साँस लेते है। भारतवर्ष ऐसे गरम देशमें भी यह दशा सालमें छः आठ महीने अवश्य रहती है। हमारे बंगाली भाई तो गरमीके दिनोंमें भी ओस और हवासे बचनेके लिए रातको छाता लगाकर सडकों पर चलने और मसहरियाँ लगा कर सोते हैं। खुली छतोंपर सोना तो मानो उनके भाग्यमें लिखा ही नहीं है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ऐसा करना बहुत ही हानिकारक है।

युरोप अमेरिका आदि देशोंमें रातको सोनेके समय मकानकी सारी खिडकियाँ और दरवाजे आदि बन्द कर लेनेकी और भी अधिक प्रथा है। क्रीमियाके युद्धमें रोगियोंकी सेवा शुश्रूषा आदि करनेमें जिस देवी नाइटिंगेलने इतना नाम पाया था, उसे रोगियोंको रातके समय अस्पतालके दरवाजे आदि बन्द करके रातभर गन्दी वायुमें रहते देखकर अत्यन्त आश्चर्य और दुःख हुआ था। एक बार उसने कुछ रोगियोंसे पूछा भी था-" रातकी वायुसे तुम लोग इतना क्यों डरते हो? क्या तुम लोग यह समझते हो कि कुछ समयके लिए सूर्य्यका प्रकाश न रहनेके कारण ही वायु भयंकर और नाशक हो जाती है? सूर्य्यास्तके बाद तुम्हें प्रकाश-पूर्ण दिनकी हवा तो मिल ही नहीं सकती, जब चाहे तुम रातकी स्वच्छ-

और स्वास्थ्यवर्द्धक बाहरी वायुका सेवन करो और चाहे रोग उत्पन्न करनेवाली कमरेके अन्दरकी गन्दी हवामें रहो।"

लोग हवासे तो इतना नहीं डरते पर उसके झोंकोंसे बहुत अधिक डरते हैं। वे लोग यह नहीं समझते कि यही झोंके हमारे शरीर और फेफडोंका बल बढानेमें सबसे अधिक सहायक होते हैं। सूर्य्यास्तके उपरान्त जब वातावरण ठंढा हो जाता है तब उसके कारण वायुमें सचारशक्ति स्वभावत बढ जाती है। सचारके कारण वायुकी शुद्धिमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। इसलिए रातकी वायु *दिनकी वायुकी अपेक्षा अधिक शुद्ध होती है*। बाहरकी बहती हुई और कमरेके अन्दरकी रुकी हुई हवामें उतना ही अन्तर है, जितना कि हरिद्वारके पासकी गगा और किसी बगाली गॉवकी गढ्ढीके जलमें अन्तर होता है। वायुमें ठढकके कारण इतना अधिक गुण बढ जाता है कि जाड़ेके दिनोंमे जब कि हवा अधिक ठंढी होती है, रोगों और मृत्युकी सख्या और दिनोंकी अपेक्षा बहुत घट जाती है। रातकी उसी ठंढी हवासे लोग इतना अधिक भागते और डरते हैं। पर इस भागने और डरनेका उनके स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक मनुष्यको जहाँ तक हो सके सदा अपने कमरोंकी खिडकियाँ और दरवाजे आदि खुले रखने चाहिए। आप कह सकते हैं कि रातके समय ठढी हवा सही नहीं जाती। वह हवा इसी लिए नहीं सही जा सकती कि आप बहुत दिनोंसे उसके सहनेका अभ्यास छोड़ बैठे हैं। जिस नदीका मार्ग जबरदस्ती बदला गया हो उसे अपने प्राकृतिक मार्गपर लानेके लिए जिस प्रकार किसी विशेष परिश्रमकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार जिस मनुष्यका स्वभाव जबरदस्ती बदला गया हो उसे अपना प्राकृतिक स्वभाव ग्रहण करनेमें विशेष अड़चन नहीं होती। केवल एक महीनेमें आपको खिडकियाँ और दरवाजे खोलकर सोने और बैठनेका इतना अभ्यास हो जायगा कि फिर आपको बन्द कमरोंमें थोड़ी देरतक रहना भी बहुत कठिन जान पड़ेगा। जाड़ेके दिनोंमें अथवा अन्य अवसरों पर जब कि ठढी और तेज हवा चलती हो, आप सरदींसे बचनेके लिए एकके बदले दो और दोके बदले तीन रिहाफ ओढ़ें, पर खिडकियाँ और दरवाजे बन्द करके गन्दी और जहरीली हवामें कभी रात भर न पड़े रहें। किवाड़े बन्द करनेमें यदि आपका मुख्य उद्देश्य सरदीसे बचना ही हो, तो वह उद्देश्य रिहाफोंकी सख्या

बढानेसे भी पूरा हो जाता है, पर हाँ यदि आप गन्दी और विषाक्त हवाके उद्देश्यसे ही किवाडे बन्द करते हों तो बात दूसरी है। आपका स्वास्थ्य बनाये रखने और सुधारनेके लिए साफ हवाका आवश्यकता है, आप इस बातकी कभी चिन्ता न करें कि वह साफ हवा कितनी ठढी है। बहुत तेज जाड़ा पड़ने पर आप यदि पूरी खिड़की न खोल सकें तो आधी अथवा थोड़ीसी अवश्य खोल दें, क्योंकि बहुत तेज ठढकमे सब प्रकारके दूषित कीटाणुओं आदिका नाश होता है।

सदा खुली हवामे रहनेका अभ्यास करो, तुम्हें कभी कोई रोग न होगा। यही नहीं बल्कि उस दशामें तुम गन्दी और बन्द हवामे थोड़ी देरतक भी न रह सकोगे। अभी हालमे जब कप्तान कुक दक्षिणी ध्रुवकी ओर गये थे तब वहाँके एक टापूमे उनका जहाज ठहरा था। वहाँके कुछ जगली लोग मल्लाहोंके साथ जहाज पर चले आये और थोड़ी देरतक उनकी कोठरियोंमें रहे। उतने ही समयमे उन्हें बेतरह खाँसी आने लगी, छातीमे दरद होने लगा और उनमेंसे कुछको बुखार भी आने लगा। पुश्तैहा पुश्तसे खुली हवामे रहनेके कारण वे उससे इतने अभ्यस्त हो गये थे कि दस पाँच मिनिट भी गन्दी हवामे रहकर वे उसके दुष्परिणामसे न बच सके।

व्यायाम।

अब हम स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्तिम सिद्धान्तकी कुछ बातें बतलाकर यह पुस्तक समाप्त करते हैं। उपवास, जल और वायु आदिके अतिरिक्त मनुष्यकी आरोग्यताके लिए व्यायाम भी बहुत ही आवश्यक है। व्यायामकी उपयोगिता इतनी अधिक और सर्व-सम्मत है कि आजतक उसके सम्बन्धमें कभी किसी प्रकारका वादविवाद या विरोध हुआ ही नहीं। मनुष्यजातिको व्यायामसे होनेवाले लाभ हजारों वर्षोंसे मालूम हैं और सदा उनकी उपयोगिताका समर्थन होता आया है। एक प्रसिद्ध डाक्टरका मत है कि जब म शारीरिक श्रमसे होने वाले कामोंकी ओर ध्यान देता हूँ तब मुझे कहना पड़ता है कि यदि सर्वसाधारणमें व्यायामका यथेष्ट प्रचार हो जाय तो आजकलके बहुतसे फैलनेवाले रोगोंका आपसे आप नाश हो सकता है। रोगोंको औषध आदिकी सहायताके

नेकी अपेक्षा शारीरिक संगठनको दृढ करके दूर कर देना कहीं अधिक उत्तम और निर्दोष है। चिरायता या नीमकी पत्तियोंको औंटा औंटा कर उनके विषतुल्य कडुए काढे पीनेकी अपेक्षा उन पेड़ों पर चढना अथवा उन्हें कुल्हाड़ीसे काटना कहीं अधिक उपयोगी है। इंग्लैण्डके प्रसिद्ध राजमंत्री ग्लैण्डस्टनने भूख बढानेके लिए तरह तरहकी औषधोंकी अपेक्षा कुल्हाड़ी और रस्सी लेकर सवेरेके समय जंगलकी ओर निकल जानेको ही अधिक उपयोगी बतलाया था।

मनुष्यके शरीरकी उपमा किसी ऐसी नावसे दी जा सकती है, जिसके चलानेके लिए बिजली (या भाफ आदि) और पाल दोनोंकी आवश्यकता होती हो। जिस समय हवा बन्द रहेगी उस समय तो वह नाव बिजली या भाफके सहारेसे चलती रहेगी, पर जब हवा चलने लगेगी तब उसकी गतिके बढानेमें पालसे भी सहायता मिलेगी। ठीक यही दशा हमारे शरीरकी है। साधारण स्थितिमें तो वह अपनी भीतरी शक्तिसे काम करता ही रहेगा, पर वायुसेवन और व्यायाम आदि पालकी तरह उसकी सहायता करेंगे। यही नहीं बल्कि जब कभी हमारे शरीरके भीतरी इंजिनके बिगडनेकी बारी आवेगी तब उसी व्यायामरूपी पालकी सहायताके कारण उसकी गतिमें कोई अन्तर न आने पावेगा। व्यायामके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह दंड, मुगदल, बैठक, डंबेल या जिम्नास्टिक आदिके रूपमें ही हो। सभी प्रकारके कठिन शारीरिक परिश्रम व्यायाम ही हैं। किसी पहाडी पर चढने या दौडनेसे आपका केवल व्यायाम ही नहीं होगा बल्कि आप कलेजे और श्वाससम्बन्धी सब प्रकारके रोगोंसे भी मुक्त रहेंगे। अफीमकी सतकी गोलियाँ खाकर आप कुछ समयके लिए उनिद्र रोगको भले ही दबा लें, पर उसका अन्तिम परिणाम आपके लिए घातक ही होगा। पर दिनके समय मैदानोंमें दौड-धूपकर अथवा चक्कर लगाकर बिना कुछ व्यय किये अथवा जोखिम उठाये आप केवल अपने उन्निद्र रोगसे ही मुक्त नहीं हो जायँगे, बल्कि और भी किसी रोगको अपने शरीरमें घर न करने देंगे। रोगोंकी भयंकरताका कारण बहुधा शारीरिक दुर्बलता ही हुआ करती है और उस दुर्बलताको समूल नाश करनेका मुख्य और सर्वोत्तम साधन व्यायाम है।

डॉक्टर हर्फ़्लैण्डकी सम्मति है कि इधर बहुत दिनोंसे मनुष्य घरके अन्दर बन्द रहने और पका पकाया भोजन करने लग गया है, और दिन पर दिन उसके रोगी और दुर्बल होनेका मुख्य कारण यही है। यदि मनुष्य अपनी शारीरिक दशा सुधारना चाहे तो उसे उचित है कि वह उन्हीं प्राकृतिक नियमोंका पालन फिरसे आरम्भ कर दे, जिनके अनुसार वह बहुत प्राचीन कालमें चलता था। अर्थात् यदि मनुष्य नीरोग रहना और बलिष्ठ होना चाहता हो तो उसे उचित है कि वह यथासाध्य शहरके बाहर मैदानमें रहे अथवा कमसे कम घूमे फिरे और सदा सादा भोजन करे। डाक्टर बरनर मैक-फेडनका मत है कि मनुष्यका शारीरिक अथवा नैतिक सगठन कदापि आधुनिक नष्ट सभ्यताके उस जीवनके लिए उपयुक्त नहीं है जो उसे सदा घरोंमें बन्द रखता और दिनपर दिन उसको शारीरिक श्रमसे वंचित करता जाता है। यदि डारविन साहबका सिद्धान्त ठीक मान लिया जाय—जो कि वास्तवमें बहुतसे अंशोंमें ठीक होनेके अतिरिक्त ससारमें प्रायः सर्वमान्य सा है—तो उक्त दोनों विद्वानोंके मतोंकी और भी अधिक पुष्टि हो जाती है। उसके भाईबन्द—बन्दर, गुरिल्ले, चिम्पैंजी आदि—सदा एक पेडपरसे दूसरे पेड़ पर कूदा करते हैं और जगल जगल घूमते रहते हैं। इस दृष्टान्तसे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य भी विज्ञान और कलाकौशल आदिका पीछा छोडकर उन्हींका सा हो जाय। कहनेका मतलब केवल यही है कि मनुष्य निकम्मा और सुस्त बने रहनेके लिए नहीं है, बल्कि चचल, चपल और फुरतीला बने रहनेके लिए है।

जो लोग सभ्यताके इतिहास और विकासके सिद्धान्तोंसे भली भाँति परिचित हैं उन्हें यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि मनुष्य निरी जगली अवस्थासे कितने रूपोंमें परिवर्तित होकर वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। उसकी सभ्यता और एक-देशीयताके साथ ही साथ अकर्मण्यता और अस्वस्थता आदि अनेक दोषोंकी भी समान मात्रामें ही वृद्धि होती जाती है। यद्यपि मानव समाजका फिर उसी प्राचीन स्थिति तक पहुच जाना न तो किसीको अभीष्ट ही हो सकता है और न सम्भव ही है, तथापि उसके शारीरिक कल्याणके लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि वह उस प्राचीन कालके अपने जगली स्वभावोंका सर्वांशमें परित्याग न कर

दे। जिस मनुष्यके पूर्वज सदा अपना डेरा डंडा लादे हुए एक स्थान
स्थान तक घूमा करते थे, वही मनुष्य आजकल सभ्य हो जानेके कारण सौ
कदम चलनेमें भी अपना अपमान समझता है। आजकल मकान ऐसे स्थ
बनवाये या लिए जाते हैं, जहाँ दरवाजे तक गाड़ी लग सके। गाड़ी प
होनेके लिए बाबू साहबको सड़क तक चलनेकी तकलीफ भी न उठानी प
सुकुमारताका फल भी हाथोंहाथ मिल जाता है। बाबू साहब सदा
रोगोंका अड्डा बने रहते हैं। अधिक पैदल चलनेसे सालमें दो चार जूतो
भले ही बढ़ जाय, पर डाक्टरकी फीस और नुसखोंके दाम देनेसे अव
कारा हो जायगा। खूब घूमने फिरनेके लाभोंकी परीक्षा दो ही दिनमें हो
है एक दिन आनन्दपूर्वक घरमें ही बैठे रहकर और दूसरे दिन दो चार दस
चक्कर लगाकर। पहले दिन आप जो कुछ खायेंगे वह छाती पर धरा रह
और रातको अच्छी तरह नींद न आयेगी और दूसरे दिन भोजन म
जायगा और रात भर आप खूब खर्राटे लेंगे।

मनुष्यका शारीरिक-संगठन ही कुछ ऐसा अद्भुत है कि उससे जिस
काम न लिया जायगा वह धीरे धीरे दुर्बल होने लगेगा और अन्तमें बे
नष्ट हो जायगा। हाथ पैरोंसे काम न लिया जाय तो वे सूख जायँगे ।
मुलायम और पतला भोजन करनेसे दांत झड़ जायेंगे, और यदि हम
टोपी और साफेका व्यवहार करके बालोंकी आवश्यकता दूर कर देंगे त
बाल भी व्यर्थ सिरका बोझ बने रहना पसन्द न करेंगे और झड़ने लगेंगे
दशा फेफड़ोंकी भी समझिए। यदि हम उनसे यथेष्ट अथवा विशेष रूप
लेना छोड़ देंगे तो निश्चय है कि वे भी रोगी हो जायँगे। फेफड़ों आदि
काम लेनेका सबसे अच्छा उपाय व्यायाम है। जो मनुष्य सदा किसी
प्रकारका व्यायाम करता रहेगा वह किसी प्रकारका व्यायाम न कर
अपेक्षा कहीं अधिक नीरोग और बलिष्ठ रहेगा। यदि समान स्थितिकी
बोंमेंसे एकका विवाह किसी देहाती साधारण जमींदारके साथ और
शहरके किसी धनी कोठीवालके साथ कर दिया जाय तो शरीरसे काम
उपयोगिता सहजमें सिद्ध हो जायगी। देहातीका स्त्रीको कुँएसे पानी भरन

ो पीसनी पड़ेगा, गौओं भैसोंकी सानी आदिका प्रबन्ध करना पड़ेगा और ' प्रकारके और भी अनेक कार्य करने पड़ेंगे। पर कोठीवाल महाशयकी स्त्री दिन मुलायम बिछौनों पर पड़ी पड़ी ' सरस्वती ' और ' स्त्रीदर्पण ' के पन्ने उल-, जी घबराने पर हाथमें मौजा बुननेकी दो तीन सलाइयाँ और दो चार ऽ ऊन ले लेगी और निसरानी तथा मजदूरनी पर हुकुम चलावेगी। दस बरस जब कभी किसी अवसर पर दोनों बहनोंकी भेंट होगा तब दोनोंका अन्तर ा ही प्रकट हो जायगा। देहातवाली स्त्री स्वयं हृष्ट पुष्ट होनेके अतिरिक्त दो ' मोटे ताजे बालकोंकी माँ होगी और कोठीवालकी स्त्री दुबली, पतली और र रोगसे पीड़ित! यह एक अनुभवसिद्ध बात है कि पानी भरने और चक्की निवाली स्त्रियोंको प्रदर या उसी प्रकारका और कोई रोग बहुत ही कम और कदा-(ही होता है, पर युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें जो स्त्रियाँ पढ़ पढ़ उ कर डाक्टरी, बैरिस्टरी या क्लर्की करने लगती हैं उन्हें तरह तरहके सैकड़ो आकर घेर लेते हैं। अतः आँखें बन्द करके किसी देशकी प्रथाका अनुकरण ैसे पहले उस प्रथाके गुण-दोष आदिकी भी भली भाति मीमांसा कर लेनी चाहिए । न हो कि केवल तड़क भड़कके भुलावेमें ही पड़कर हम अपने के उत्तम गुणोंको छोड़ बैठें और पीछे हाथ मलनेकी बारी आवे।

आजकलकी सभ्यता शरीरसे काम लेनेको पापसा समझती है, उस उन कामोंव (करें चाहिए। तो भी अधिकारा नगरनिवासियोंको अपने पैरोंस तो बहुत कम लेना पड़ता है, पर हाथोंसे काम लेनेकी उन्हें बहुत ही थोड़ी आवश्य-(पड़ती है। पर उचित और आवश्यक यह है कि जिस अंगसे हमारे व्यापा कम काम लिया जाता हो उस अंगसे काम लेनेके लिए हम या तो व्यायाम और या अपने लिए कोई नया व्यापार निकालें। केवल मनोविनोद और ग्यके लिए यदि हम बढ़ई या लोहारका काम मारें और फुरसतके समय पर ही दो चार पीढ़े पटरियाँ बना सकें तो इसमें लज्जा या संकोचकी बात नहीं है। जगलमें जाकर लकड़ियाँ काटनेमें कोई शरम नहीं है, यदि ा हो भी तो यह अधिकसे अधिक उन्हें अपने सिर पर लाद कर अपने घर तक में ही हो सकती है। गोलियाँ निगलने और शीशियाँ पीनेकी अपेक्षा

डंड पेलना, बैठकें करना और मुगदल फेरना यहीं श्रेयस्कर है। अस्पताल बनवानेमें बहुतसे रुपये लगानेकी अपेक्षा अखाड़े और व्यायामशालायें बनानेमें थोड़े रुपये लगाना यहीं उत्तम है। रोग उत्पन्न करके उन्हें चंगा करनेका प्रयत्न व्यर्थ है, प्रयत्न ऐसा होना चाहिए, जिसमें रोगका मूल ही नष्ट हो जाय उसे उत्पन्न होने, बढ़ने और फैलनेका अवसर ही न मिले। जड़ छोड़ कर पेड़ काटना कभी लाभदायक नहीं हो सकता, क्योंकि जड़ फिर पनपेगी, पेड़ फिर उगेगा। इतना ही नहीं बल्कि उसके बीज चारों ओर गिरकर और भी नये पेड़ उत्पन्न करेंगे। अपने शरीररूपी भूमिको रोगरूपी वृक्षके जमने योग्य ही न होने दो, और पहलेसे जो रोग उत्पन्न हो उनका समूल नाश करो, इसीमें तुम्हारा, तुम्हारी जातिका, तुम्हारे देशका और समस्त संसार तथा मानव-जातिका कल्याण है। एवमस्तु।